ओंकार पुस्तकमाला की नवीं पुस्तक।

❀ ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ❀

का

जीवन-चरित

प्रकाशक

ओंकारनाथ वाजपेयी

पं० काशीनाथ वाजपेयी के प्रबन्ध से

ओंकार प्रेस प्रयाग

में छपा।

सन् १९१३ ई०।

प्रथमबार १०००] [मूल्य ॥)

विषय-सूची ।

—:o:—

भूमिका।

संसार के इतिहास में से यदि महात्माओं के जीवन चरित्र निकाल दिये जांय तो फिर इतिहास की वही दशा होगी जो जीव रहित शरीर की होती है। प्रत्येक देश व जाति का गौरव उस देश व जाति में उत्पन्न हुये महात्माओं के जीवन चरित्रों पर निर्भर है। आज हम यूनान तथा रोम के इतिहास को क्यों आदर की दृष्टि से देखते हैं कारण यह है कि उस देश व जाति ने ऐसे महापुरुषों को उत्पन्न किया था कि जिनका यश जबतक सूर्य्य चन्द्र और पृथ्वी रहेगी तब तक सदा स्थिर रहेगा। अतः प्रत्येक जाति व देश में उत्पन्न हुये विद्वानों का धर्म्म है कि वे अपनी जाति और देश में उत्पन्न-हुये महापुरुषों के जीवन चरित्रों को सुरक्षित रक्खें। यदि पाश्चात्य देशों की पुस्तकों को देखे तो पता लगेगा कि एक २ महात्मापर सैकड़ों पुस्तकें लिखी गई हैं। २०) रुपये से लेकर एक पैसे तक की पुस्तकें आपको उस देश में उत्पन्न हुये प्रत्येक महापुरुषों की मिलेगी। तभी तो एक छोटा सा बालक भी उस देश का ऐसा नहीं मिलेगा जिस ने अपने यहां के महात्माओं के जीवन चरित्र न पढ़े हों।

खेद है कि हमारी हिन्दीभाषा में अभी जीवन चरित्रों की बड़ी कमी है। प्रत्येक महात्माके सैकड़ों प्रकार के जीवनचरित्रों

की कौन कहे यहां तो बहुत महापुरुषों को यहीं सब लोग नहीं जानते। इस का कारण यह है कि प्रत्येक प्रान्त में अपनी अपनी जुदी भाषा बोली जाती है इसलिये जिस प्रान्त में जो महात्मा उत्पन्न हुआ वहीं के लोग उस को जानते हैं। परन्तु जब हिन्दी भाषा भारतवर्ष भर की एक भाषा बनाई जा रही है उस समय प्रत्येक भाषा के भण्डार को खोजने की आवश्यकता है।

जिस महात्मा की इस छोटी सी पुस्तक में जीवन चरित्र लिखा गया है। उस के महान कार्य्य के लिये केवल बंगाल ही नहीं किन्तु सारा भारत वर्ष अनुग्रहीत है।

प्रत्येक पुरुष का धर्म्म है कि वह अपने बच्चों को अपने देश में उत्पन्न हुये महापुरुषों का जीवन अवश्य पढ़ावें। मैं ने ओंकार प्रेस से महात्माओं के जीवन चरित्रों की एक माला निकालने की इच्छा की है जिस में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का जीवन चरित्र पहिली पुस्तक है। यदि आप लोगों ने इसे पसंद किया तो आशा है कि बहुत शीघ्र आप के सन्मुख द्वितीय पुस्तक उपस्थित करूंगा।

निवेदक

ओंकारनाथ बाजपेयी

श्रीमान् ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

मानवों की जीवनी हैं यह मुझ बतला रहीं।
अनुसरण कर मार्ग जिनका उच्च हो सकते सभी ॥
कालरूपी रेत में पद चिन्ह जो तजि जायँगे।
मानकर आदर्श उनको ख्याति नर जग पायँगे ॥

Onkar Press, Allahabad.

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर

हुगली ज़िले के अन्तर्गत तारकेश्वर के पश्चिम और जहानाबाद के पूरब प्रायः चार कोस बनमालीपुर ग्राम में भुवनेश्वर बन्द्योपाध्याय महाशय रहते थे। वे संस्कृत शास्त्र में बड़े अच्छे पण्डित थे। उनके पांचो पुत्र भी संस्कृत भाषा में अच्छे पण्डित हुये। तृतीय पुत्र का नाम रामजय बन्द्योपाध्याय था उन्होंने कुछ दिन के उपरान्त वीरसिंह ग्राम निवासी विख्यात पण्डित उमापति तर्क सिद्धान्त की दुर्गा नाम्नी सबसे छोटी कन्या का विवाह किया था। उनके दो पुत्र और चार कन्या उत्पन्न हुईं। उनमें से ज्येष्ठ पुत्र का नाम ठाकुरदास व कनिष्ठ पुत्र का नाम कालिदास था चार कन्याओं के नाम मङ्गला, कमला, गोविन्दमयी और अन्नपूर्णा थे। भुवनेश्वर की मृत्यु के उपरान्त उनके पुत्रों में सम्पत्ति विभाग होने में बड़ा झगड़ा उत्पन्न हुआ। रामजय

धार्म्मिक उदार स्वभाव के थे। थोड़े मामले के लिये उन्होंने सहोदर भाइयों के साथ विरोध करना उचित न समझ कर दो पुत्र व चार कन्याओं को छोड़ कर किसी से कुछ न कह कर सन्यासी वेश में तीर्थ पर्यटन को प्रस्थान किया। कुछ दिन के उपरान्त उनकी पत्नी दुर्गादेवी को वनमालीपुर में रहना बिलकुल असह्य हो उठा। निदान वे दोनों पुत्र और चारों कन्याओं को लेकर पिता के यहां वीरसिंह ग्राम को चली गईं। उनके पिता उमापति तर्क सिद्धान्तने आदरपूर्वक अपनी निराश्रया दुहिता व उसके सन्तानों को अपने घर में रख लिया। उस समय में उनके ज्येष्ठ नाती ठाकुरदास की अवस्था दश वर्ष व कनिष्ठ कालिदास की अवस्था सात वर्ष की थी। तर्क सिद्धान्त ने दोनों नातियों को शिक्षा के निमित्त वीरसिंह निवासी भट्टाचार्य पं० केनाराम वाचस्पति को नियुक्त किया। आचार्य्य महाशय उस समय में इस प्रदेश में ज्योतिष शास्त्र के अद्वितीय पंडित थे। उन्होंने थोड़े ही दिनों में दोनों भाइयों को बङ्गला भाषा अङ्क गणित व ज़मीदारी सरिस्ते की शिक्षा देकर संक्षिप्त सार व्याकरण के अध्ययन कराने में लगे। उमापति तर्क सिद्धान्त ने अपने को नितान्त वृद्ध होने के कारण सांसारिक कार्य्य का भार पुत्र रामसुन्दर भट्टाचार्य के हाथ में सौंप दिया। इधर रामसुन्दर भट्टाचार्य्य की पत्नी के साथ दुर्गादेवी का झगड़ा होने लगा। रामसुन्दर प्रायः स्त्री का

ही पत्ते लेते थे, एक दिवस उन्होंने व उनकी स्त्री ने दुर्गादेवी से कहा कि तुम्हारे दो पुत्र व चार कन्याओं का अब हम प्रतिपालन नहीं कर सकेंगे। तुम कहीं अन्यत्र रहने का प्रवन्ध करलो। अपने भाई के मुंह से यह बात सुन कर दुर्गादेवी कुछ स्थिर न कर सकीं। अन्त में उसने वृद्ध पिता तर्क सिद्धान्त से सब वृतान्त कहा। जिसे सुनकर उन्होंने कहा मैं सब भली प्रकार जानता हूं। अब उनके साथ तुम्हारा एकत्र प्रेम से रहना नहीं हो सकेगा इसलिये प्रथक् स्थान में वास करना अति अवश्यक है। दुर्गा देवी भी इस बात को मान गईं। दूसरे दिन तर्क सिद्धान्त ने गांव के भले लोगों को बुलाकर कहा कि रामसुन्दर व उसकी वहू के संग दुर्गा का एक गृह में रहना अति कठिन है। अतएव मैं स्वतन्त्र स्थान में इसका गृह वनवा दूंगा यह स्थिर किया है। इसमें गांव के लोग भी राजी हुये। अनन्तर १।~) वार्षिक पर थोड़ी भूमि लेकर उसमें गृह वनवा दिया। तदुपरान्त स्थिर किया कि ज़मींदार से कह कर व अनुरोध करके इसको माफ़ करा दूंगा।

इतने में तर्क सिद्धान्त यह जगत् परित्याग करके चल दिये। निदान उस नयीभूमि का किराया माफ़ न हुआ। उसका वार्षिक कर ज़िमींदार को देना पड़ता था। दुर्गादेवी के भोजनादिक का कोई उपाय न था। उस समय में विलायती सूत यहां नहीं आया था।

इस प्रदेश की ग़रीब अनेक स्त्रियां सूत कात करके व उसे बेंच करके अपना निर्वाह करती थीं। लोगों के उप॰ देशानुसार दुर्गादेवी भी एक चरखा मोल लेकर के सूत कातने लगीं। सूत बेच करके जो कुछ धन आता था उससेही कष्ट पूर्वक अपना निर्वाह किसी प्रकार करती थीं। इस समय में ठाकुरदास की अवस्था १४ वर्ष की हो गई थी। अधिक समय पढ़ने से गृहस्थी का निर्वाह होना दुष्कर था। कुटुम्बी लोगों ने यह सलाह दी संस्कृताध्ययन बन्द करके जिससे शीघ्र धनोपार्जन करने में योग्य हो। ऐसी विद्या पढ़ाना उचित और आवश्यक है।

इस ओर रामजय ने तीर्थस्थान में एक दिन रात्रि को स्वप्न देखा की तुम स्त्री पुत्रों को कष्ट देकर तीर्थ क्षेत्र में भ्रमण करते हो इस में तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। इस कारण पांच वर्ष के उपरान्त वनमालीपुर में आकर उन्होंने देखा कि भाई लोग अलग होगये हैं और उनकी पत्नी वीरसिंह में पिता के घर में रहती हैं। निदान रामजय अपने स्त्री पुत्रों को लाने के लिये वीरसिंह में गये। गेरुआ वस्त्र पहने हुए सन्यासी के भेष में ससुराल को चल दिये किसी को अपना परिचय न देकर ग्राम में अपना इधर उधर परिभ्रमण करने लगे। किन्तु उनकी कनिष्ठा कन्या अन्नपूर्णादेवी अपने पिता को चीन्ह कर बाबा २ कहके ऊंचे स्वर से रोदन करने

लगी। तब रामजय ने अपना परिचय दिया। कई दिवस वीर-सिंह में रह कर परिवारगण को वनमालीपुर में ले जाने का उद्योग किया किन्तु उनकी पत्नी वनमालीपुर में जाने को राजी न हुई। क्योंकि उनके भाइयों ने उसके साथ खोटा व्यवहार किया था। और इतने दिन उसकी किसी ने कुछ खबर भी न ली थी। निदान रामजय वीरसिंह में अपनी स्त्री और पुत्र के साथ रहने के लिये विवश हुये।

रामजय अति बुद्धिमान बलशाली और साहसी पुरुष थे लोहे का डंडा लेकर सर्वत्र भ्रमण करते थे। किसी का भय नहीं करते थे। एक समय वह वीरसिंह से मेदिनीपुर जाते थे मार्ग में इन्होंने एक रीछ को देखा। उसे देख के कुछ भय कर एक वृक्ष के नीचे खड़े हो गये भालू उनके ऊपर आक्रमण करने के हेतु वृक्ष के चारों ओर घूमने लगा। वे भी आगे आगे घूमने लगे। थोड़ी देर बाद रीछ ने दोनों हाथ पसार कर वृक्ष को छाती में देकर उनके पकड़ने की चेष्टा की, उस समय रामजय ने वृक्ष के ऊपर की ओर से भालू के दोनों हाथ पकड़ लिये और उसे वृक्ष में रगड़ना आरम्भ कर दिया इस प्रकार जब वह अधमरा होगया तो उसे छोड़ दिया भालू की मरा हुआ शरीर पृथ्वी पर पड़ा देख कर प्रस्थान करने को उद्यत हुये। ऐसे समय में भालू ने उठ कर बड़े वेग से दौड़कर रामजय की पीठ में पंजा मारा। उस समय लोहू निकलता देख अत्यन्त

क्रोध में भर लोहे की छड़ी की मार से भालू को मार डाला रीछ के पांच नखाघात के घाव एक मास के लगभग पीड़ित रह कर आराम हो गये।

ठाकुरदास की बङ्गला भाषा और गणित शास्त्र तथा जमीदारी कागज़ की शिक्षा पूर्ण रीति से हो गई है ऐसा देख कर रामजय ने ठाकुरदास को लेकर कलकत्ते की यात्रा की। वहां पर बाग बाजार में सभाराम वाचस्पति के भवन में उपस्थित होने पर उन वाचस्पति महाशय ने ठाकुरदास को व्याकरण शिक्षा देने की सलाह दी किन्तु रामजय ने शीघ्र धन कमाने वाली अंग्रेजी विद्या सीखने का अनुरोध किया; क्योंकि उन्होंने पैतृक सम्पत्ति भ्रातृवर्ग को प्रदान कर दी थी। उनके पास अब कुछ सम्पत्ति न थी। इस कारण, जिससे पुत्र शीघ्र धन कमाने योग्य हो सके, ऐसी विद्या शिक्षा का उपदेश प्रदान किया। उस समय कलकत्ते में कोई अङ्गरेज़ी विद्यालय नहीं था। वाचस्पति महाशय ने अंगरेज़ी शिक्षा देने के हेतु एक दलाल से अनुरोध किया दलाल ने वाचस्पति महाशय के अनुरोध से स्वयं शिक्षा न दी; किन्तु अंगरेज़ी भाषा में सुशिक्षित जहाज़ के सापसरकार नामक एक कायस्थ से शिक्षा देने के हेतु अनुरोध किया।

सीपसरकार ठाकुरदास को प्रातःकाल और सन्ध्या के उपरान्त भली भांति से अंगरेजी भाषा की शिक्षा देने में

प्रवृत्त हुए। थोड़े ही दिनों में ठाकुरदास कुछ काम करने योग्य हो गये यह देख कर रामजय ने ठाकुरदास से कहा कि ईश्वर तुम्हारा भला करेगा। मैं ईश्वर प्राप्ति के लिये फिर पर्य्यटन की यात्रा करता हूं इससे ठाकुरदास अत्यन्त दुःखित हुए उन्होंने यह सम्वादगृह को लिखा कुछ दिन उपरान्त शिक्षक ने ठाकुरदास को अति दुर्बल देख कर पूछा कि तुम दिन २ क्षीण क्यों होते जाते हो? इस पर उन्होंने उत्तर दिया महाशय दिन में दो प्रहर के समय भोजन करता हूं। रात्रि में भोजन नहीं होता इसका कारण पूछने पर ठाकुरदास ने कहा, संध्या के उपरान्त ही वाचस्पति महाशय के भवन में लोग भोजन कर लेते हैं और मैं रात्रि दश बजे के उपरान्त आप के गृह से वहां जाता हूं इस लिये हमारा भोजन नहीं होता, इस कारण अनाहार से मैं दुर्बल होता जाता हूं। इस पर शिक्षक ने कहा तुम यदि रसोई बना सको तो हमारे गृह निवास करो। इस पर ठाकुरदास राजी होकर दयालु शिक्षक के गृह में रह कर मन लगा कर अंगरेजी सीखने लगे। कभी कभी एकाद दिन शिक्षक को अपने कार्य से निवृत्ति होकर घर आने में अधिक रात्रि हो जाती थी उस दिन ठाकुरदास क्षुधा से कातर हो जाता था। हाँथ में एक पैसा भी नहीं था कि भूखे होने पर एक पैसे का जलपान कर लेवे; उनके पास पूंजी में केवल एक पीतल की थाली और एक पीतल का लोटा था। मन में

स्थिर किया कि यह विक्रय करने से कुछ पैसे हो जांयगें। समय २ क्षुधा प्राप्त होने पर एक पैसे का कुछ लेकर के खाने से भी दिन व्यतीत हो जायगा। यह स्थिर करके जोड़ासाको के नूतन बाज़ार के एक कांसारी की दूकान में वह थाली व लोटा बेचने को गये। कांसारी ने थाल व लोटे को तौल कर उसका १।) रु० मूल्य स्थिर किया; किन्तु अनजान मनुष्य से पुरानी वस्तु मोल लेने में भय जान, बोला कि इसके पूर्व एक मनुष्य से पुराने बासन खरीद कर हम बड़ी विपत्ति में पड़े थे। तब से सब दूकानदारों ने प्रतिज्ञा की है कि अनजान मनुष्य से कभी पुरानी वस्तु न खरीदेंगे यह सुन कर ठाकुरदास थाल व लोटा लेकर गृह को लौट आए बीच बीच में एक २ दिन शिक्षक सौप सरकार के गृह चले जाते थे तब अधिक रात्रि हो जाती थी। उस दिन ठाकुरदास क्षुधा से कातर हो जाते थे। एक दिन शिक्षक के प्रातःकाल से काम में लगे रहने के कारण घर में न आने से ठाकुरदास क्षुधा में व्याकुल होकर एक वृद्धा जो लावा बेचती थी उसकी दूकान के सामने कुछ देर खड़े रहकर बोले, कुछ जल दे सकती हो हमें प्यास लगी है। इस पर वृद्धा ने पीतल की रकाबी में मुड़की (खीलें) देकर पीने के लिये जल दिया। वह खाते २ ठाकुरदास के चक्षुओं में जल आगया इस पर वृद्धा ने पूछा की बाबा ठाकुर तुम क्यों रोते हो इस पर उन्होंने उत्तर दिया मा! आज सारे दिन हमारा भोजन

नहीं हुआ। वृद्धा ने पूछा क्यों, नहीं हुआ" उन्होंने कहा प्रातः-काल से सरकार महाशय गृह नहीं आये। यह सुन कर दया-मयी वृद्धा ने दधि व मुड़की देकर फलाहार कराया। एवं कहा जिस दिन तुम्हारा भोजन न होवे उस दिन यहां आकर फलाहार किया करना। एक दिन सर्कार ने अधिकारियों से आकर यह सुना कि ठाकुरदास का आज दिन भर भोजन नहीं हुआ। इससे वह अत्यन्त दुःखित हुए एवं कहा, तुम्हारी जो शिक्षा हुई है उससे तुम कार्य्य योग्य हो गये हो इस लिये तुम्हारे इस प्रकार क्लेश सहने का प्रयोजन नहीं है आज इस समय तो जाकर आहारादि करो। कल प्रातःकाल ही तुम्हारे सम्बन्ध में जो कुछ मुझे कहना होगा वह वाचस्पति महाशय से मैं कहूंगा। दूसरे दिन सवेरे वाचस्पति महाशय के पास जाकर उनसे कहा कि, आप का स्वजाति ठाकुरदास कार्य्य योग्य हो गया है। उसे बंगला व अंगरेजी में हिसाब करने की भली भांति योग्यता हो गई है आप किसी से कह कर इसको किसी कार्य्य में लगा दें। इसका चाल चलन भी उत्तम है। इसको वाचस्पति ने भी स्वीकार किया।

बड़ीशा ग्राम में वाचस्पति का एक सगा कुटुम्बी था। वह एक नाबालिग पुत्र और स्त्री छोड़ कर मृत्यु को प्राप्त हो गया था। अब कोई रक्षक न रहने से कार्य्यदक्ष कोई विश्वासी पुरुष को रखना आवश्यक था।

वाचस्पति महाशय ने ठाकुरदास से कहा तुमको वहां पर एक वर्ष रह करके सब जायदाद का कार्य्य एवं लेने देने का काम करना होगा। ठाकुरदास ने स्वीकार कर लिया और उड़ीसा में कुछ दिन रह कर नाबालिग़ का विशेष रूप से लेन देन का काम संभाला। तब तो वाचस्पति ने ठाकुरदास के सांसारिक खर्च के लिये रुपये देने में आगा पीछा नहीं किया। ठाकुरदास की जननी भी महीने २ कुछ पाने लगी। इससे उनका कष्ट मिटने लगा एक वर्ष तक उड़ीसा में रह कर फिर ठाकुरदास ने वाचस्पति महाशय से कहा। महाशय मैंने अनेक कष्ट से अंगरेजी विद्या में शिक्षा पाई है। आप मुझको अंगरेजी हिसाब के कार्य्य निर्व्वाह के हेतु किसी से कह करके कहीं नियुक्त कर दें। वाचस्पति महाशय ठाकुरदास के कार्यप्रणाली और सौजन्यता से बहुत सन्तुष्ट थे। इस कारण बड़ा बाज़ार दहीहट्टा निवासी परम दयालु भागवतसिंह के गृह में किसी काम पर उसे रखवा दिया। भागवत बाबू परम धार्मिक और दयालु मनुष्य थे। उनके आफ़िस में पहिले ठाकुरदास को दो रुपये वेतन पर नियुक्त किया गया। एवं गृह में स्थान देकर उसे खुराक व कपड़े भी देते थे। ठाकुरदास वे २) रु० माता के सांसारिक क्लेश निवारण के हेतु घर भेज देते थे। इस प्रकार महीने २ दो रुपये पाने पर दुर्गा देवी के संसारिक व्यय निर्वाह में बहुत सहारा होने लगा भागवत बाबू ठाकुर-

दास का उत्तम कार्य देख कर धीरे २ तनख्वाह भी बढ़ाने लगे इसके कुछ दिन उपरान्त एक दिन भागवत बाबू ने ठाकुरदास से कहा कि तुम कनिष्ट भ्राता कालिदास को बुला कर यदि अंगरेजी शिक्षा दो तो उसको भी मैं आफ़िस में नियुक्त कर दूंगा। फिर तुम दोनों भाइयों के कार्य करने से संसार का कष्ट सब दूर हो जायगा।

इस बात को सुन कर ठाकुरदास ने अपने छोटे भाई के बुलवाने में कृतज्ञता दिखलाई तब कालिदास को बुलवा कर भागवत बाबू ने अपने गृह में रक्खा और उसको अङ्गरेजी शिक्षा पाने का प्रबन्ध करा दिया इसके कुछ दिन उपरांत भागवत सिंह का परलोक हो गया तब उनके पुत्र जगद्दुलभ-सिंह और उनके कुटुम्बी लोग ठाकुरदास को पूर्वापेक्षा अधिक चाहने लगे। छोटे भाई के सब कामों में चतुर होने पर उसे अपनी जगह पर रख कर कुछ दिन ठाकुरदास ने काशीजोड़ाव मङ्गलघाट में रह कर रेशम के व्यवसाय को किया तदुपरान्त अपने देश में आय कर कांसे के बासनों का रोज़गार किया। इसी तरह कई प्रकार के व्यवसाय द्वारा अपने सांसारिक कष्ट को निवारण किया और कुछ धन भी संचित किया। इस ओर कलकत्ते में उनके भाई ने नाना प्रकार हानि के दायक कर्म किये जिससे जगद्दुल्लभ सिंह ने ठाकुरदास को पत्र लिखा कि तुम्हारे भ्राता के द्वारा हमारे कार्य्य में बहुत हानि होती है; अतएव तुम स्वयं आकर यहां कार्य्य करो॥

विशेषतः पिता ने मृत्यु काल में तुमको विश्वास पात्र समझ कर हमारे गृह व आफ़िस का सब भार सौंपा है। इसी कारण ठाकुरदास अपना रुजगार छोड़ कर फिर भागवनसिंह महाशय के गृह के काम में नियुक्त थे। शाके १७२५ में खाना कुलकृष्ण नगर के पश्चिम पातुलग्राम के निवासी पञ्चानन विद्या वागीश का पौत्री और रमाकान्त चट्टोपाध्याय की (कन्या) भगवती देवी के साथ ठाकुरदास का पाणिग्रहण हो गया॥

रमाकान्त चट्टोपाध्याय जहानाबाद के पश्चिम गोघाटनामक ग्राम में निवास करते थे। ये संस्कृत भाषा में पूर्ण पण्डित इनके चार पुत्र थे, ज्येष्ठराधामोहन विद्या भूषण, मध्यम रामधन तर्कवागीश तृतीय गुरुप्रसाद शिरोमणि, कनिष्ठ विश्वेश्वर तर्कालङ्कार थे चारों पुत्र गुणवान व दयालु थे और विद्यावागीश की दो कन्यायें भी थीं॥

ज्येष्ठा गङ्गामणिदेवी, द्वितीया तारासुन्दरी देवी थी। ज्येष्ठा गंगा मणि के गर्भ से कन्या उत्पन्न हुईं। ज्येष्ठा का नाम लक्ष्मी मणि देवी व कनिष्ठा का नाम भगवती देवी था। रामाकान्त प्रायःनित्य रात्रि में श्मसान में बैठकर जप किया करते थे और उन्होंने संसार की सभी विषय वासनाओं का त्याग करा दिया था। जीमाता रामाकान्त ने शवसाधन करके मौनावलम्बन किया है यह बात सुनकर उनके ससुर विद्या

वागीश महाशय ने कारञ्जी ग्राम से अपना जामाता रामाकान्त और कन्या गंगामणि व उनकी दो कन्याओं को पातुलग्राम में बुला लिया। पञ्चानन विद्यावागीश व राधामोहन विद्याभूषण प्रभृत इनपर आन्तरिक स्नेह रखते थे। इनके ही यत्न से वीरसिंह निवासी ठाकुर दास बन्द्योपाध्याय के साथ भगवती देवी का विवाह हुआ था। इसके पूर्व रामजय के पुत्र ठाकुरदास ने लिखना पढ़ना भली भांति सीखा है विषय कर्म्म में लिप्त होकर परिवार वर्ग का कष्ट निवारण और भरण पोषणादि कार्य्य निर्वाह कर सकेगा ऐसा देखकर ईश्वराराधना में तीर्थ क्षेत्र पर्यटनार्थ घर से चले गये इस सुदीर्घ काल में उन्होंने परिवार गण का कोई सम्वाद नहीं पाया। रामजय ने एक दिन (केदार पहाड़ में) रात्रि के समय यह स्वप्न देखा कि रामजय तुम वृथा क्यों भ्रमण करते हो स्वदेश में जाओ तुम्हारे वंश में एक सुपुत्र ने जन्म ग्रहण किया है। वह तुम्हारे वंश का तिलक होगा। वह साक्षात दया के सागर व अद्वितीय पण्डित होकर निरन्तर विद्या दान व निरुपाय लोगों का भरण पोषणादि व्यय निर्वाह द्वारा तुम्हारे वंश की अनन्तकाल स्थापिनी कीर्तिस्थापन करेंगे। रामजय पहाड़ के मध्य रात्रि को इस प्रकार का असम्भव स्वप्न देखकर चिन्ता करने लगे मुझे बहुत दिन होगये कि संसार घर द्वार छोड़कर एकांतस्थान में ईश्वराराधना में मन प्राण समर्पण कर कालक्षेप करता हूं। इस समय वे क्या

करते हैं व कौन कौन हैं यह भी मैं नहीं जानता इस प्रकार चिंता में निमग्न होकर जब फिर वह निद्रावस्था में होगये तब किसी ने मानो उनसे कह दिया कि तुम परिवार गण के निकट चिन्ता त्यागकर प्रस्थान करो, अब और विलम्ब न करो; तुम्हारे प्रति ईश्वर सहायक हुए हैं। निद्रा भङ्ग होने पर नाना प्रकार के विचार व चिंता कर रामजय ने अपने घर को यात्रा की। इसी प्रकार ६ मास पैदल चल कर वीरसिंह में आकर सुना कि उनके पुत्र ठाकुरदास कलकत्ते में करके नौकरी संसार प्रति पालन करते हैं और ज्येष्ठ ठाकुरदास व कनिष्ठ कालिदास का विवाह भी होगया है। एवं ज्येष्ठ पुत्र ठाकुरदास की पत्नी गर्भवती है और प्रसव के दिन भी निकट है और उन्मत्त हो रही है। अनन्तर रामजय तीर्थ से अपने देश में आये हैं। यह सम्वाद कलकत्ते में दोनों पुत्रों को लिखा गया। सम्वाद के पाते ही वहुत काल के उपरान्त पितृ सन्दर्शनार्थ ठाकुर दास व कालिदास ने कलकत्ते से वीरसंह की ओर यात्रा की।
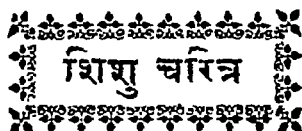
१७४२ शकाब्दाः अर्थात् सन् १८२७ सालकी १२ वीं तारीख आश्विन मंगलवार दिन को दुपहर के समय ईश्वर

चन्द्र वन्द्योपाध्याय महाशय ने संसार में जन्म लिया। तीर्थ क्षेत्र से आये हुए पितामह रामजय वन्द्योपाध्याय महाशय ने नाड़ी छेदन के पूर्व इस भूमिष्ठ बालक की जिह्वा पर कोई मन्त्र लिखकर अपनी पत्नी दुर्गा देवी से कहा कि मेरे लिखने के कारण शिशु थोड़ी देर तक दुग्धपान नहीं कर सकेगा विशेषतः कोमल जिह्वा में मेरे कठोर हस्त दिये जाने के कारण यह बालक कुछ दिन तोतला भी रहेगा। फिर यह बालक "भाग्य शाली" क्षण जन्मा अद्वितीय पुरुष व परम दयालु होगा एवं उसकी कीर्ति दिगन्त व्यापिनी होगी। इस बालक के जन्म ग्रहण करने से हमारे वंश की चिरस्थायी कीर्ति रहेगी इसको देखकर मैं चरितार्थ हुआ। अब इस बालक को और कोई मन्त्र न देवें आज से मैंही इसका अभीष्ट देव (गुरु) हुआ। यह बालक साक्षात् ईश्वर तुल्य है अतएव इस का नाम भी मैं ईश्वरचन्द्र रखता हूं। आज रामजय ने तीर्थ क्षेत्र के उस स्वप्न का सत्य जाना। ईश्वरचन्द्र जब तक गर्भ में थे तब इनके तेज से जननी भगवती देवी दश मास उनमत्ता की नाईं थीं। पितामही दुर्गा देवीने वधू के रोग दूर करने के हेतु कितने ही उपाय किये थे किन्तु किसी से भी (शान्त) नहीं हुआ। उस समय में कोई २ वृद्धा स्त्री लोग पितामही व माता मही से कहती थीं भूत लगा है और कोई २ कहती थीं डाइन लगी है। सब ओझाओं को दिखलाया गया

किन्तु किसी से भी शन्ति नहीं हुआ। अब शेष में उदय गंज निवासी पंडित प्रवर भवानन्द शिरोमणि भट्टाचार्य्य महाशय को दिखलाया गया। वे इस प्रदेश के मध्य में चिकित्सा व गणित शास्त्र में पारदर्शी थे। रोग के कारण जानने में वे बड़े चतुर थे ये रोग निर्णय के पूर्व रोगी की जन्म पत्री देखते थे। इन्होंने पितामही से कहा तुम्हारी बहू का मैंने रोग निर्णय किया किन्तु इस समय इनकी जन्म पत्री देखने की इच्छा करता हूं। चिकित्सक भट्टाचार्य्य महाशय के उक्त रूप कथन पर दुर्गा देवी ने उनकी जन्म पत्री देखने को दी। थोड़ी देर में भवानन्द ने जन्म पत्री देख करके कहा इनको कोई रोग नहीं है। ईश्वरानुगृहीत किसी महापुरुष ने इनके गर्भ में जन्म गृहण किया है। उसके तेज के प्रभाव से ऐसा होता है। इसे किसी प्रकार की औषधि सेवन न कराइये। गर्भस्थ बालक के पैदा होते ही इसके ये रोग जाते रहेगें। भवानन्द महाशयने जो कुछ कहा था। वही हुआ प्रसव के होते ही कोई उन्मादचिन्ह दिखाई न हुआ। इस कारण पितामही सर्व्वदा भवानन्द भट्टाचार्य्य के ज्योतिः शास्त्र गणित की अत्यन्त प्रशंसा करती थीं।

ईश्वरचन्द्र के भूमिष्ठ होने के थोड़ी देर पहिले पिता ठाकुरदास द्रव्यादि क्रय करने के हेतु पास ही कुमारगंज की हाट में (वजार) गये थे। वहां से उनको गृह आते देख कर

पितामह रामजय ने कुछ बढ़ कर कहा ठाकुरदास आज हमारे एक बछुरा पैदा हुआ है। उस समय में एक गौ भी गर्भिणी हुई थी। पितृदेव मन में सोचे कि गर्भवती गौ प्रसवित हुई है; किन्तु गृह में प्रवेश करके देखा कि गौ के बच्चा नहीं हुआ। उस समय बाबा ने थोड़ा हंस दिया और सूतिका गृह (सोहर) में प्रवेश कर शिशु को दिखला कर कहा कि देखो यह लड़का बछुरे के समान बड़ा सुन्दर है। इसलिये मैंने इसको बछुरा कहा था। इसके द्वारा देश का विशेष रूप से उपकार होगा। तुम इसको सामान्य बछुरा ही न जानना यह अपनी ही ज़िद रखेगा एवं सर्वत्र विजयी होगा आज हमारा स्वप्न-दर्शन सत्य हुआ। थोड़ी देर बाद घर पर पण्डित केनाराम आचार्य्य ने आकर बालक की जन्मपत्री बनाई। आचार्य्य ने गणना करके कहा कि यह बालक बड़ा पराक्रमी है। और इस के सब उच्च गृह प्रत्यक्ष दिखलाई दे रहे हैं। ऐसे फल किसी की भी जन्मपत्री में आज तक नहीं देखे गये। यह बालक जगद्विख्यात नृप तुल्य और दयामय होगा एवं दीर्घायु होकर निरन्तर धन व विद्यादान करके सर्व साधारण का कष्ट निवारण करेगा। उनके जन्म गृहण उपरान्त पिता की अवस्था (दशा) की क्रमशः उन्नति होने लगी। पांच वर्ष की अवस्था में ईश्वरचन्द्र का विद्यारम्भ हुआ॥

उस समय तत्काल वीरसिंह ग्राम में सनातन-विश्वास

नामक एक पाठशाला के अध्यापक थे। सनातन छोटे २ बालक लोगों को शिक्षा देने के समय बहुत ही मारते थे। इस कारण बालक लोग सदा डरते रहते थे और पाठशाला में जाने की इच्छा नहीं करते थे; इस लिये ठाकुरदास ने वीरसिंह निवासी कालीकान्त चट्टोपाध्याय को शिक्षक निश्चय किया। कालीकान्त बड़े कुलीन थे इस लिये उन्होंने अपने कई विवाह किये थे वे भद्रेश्वर के निकट गोरूटी ग्राम में ही प्रायः रहा करते थे। कभी कभी ससुरालों में भी रुपया प्राप्त करने के निमित्त जाया करते थे। ठाकुरदास ने भद्रेश्वर व श्रीरामपुर जाकर पता लगाकर जाना कि कालीकान्त सर्वदा गोरूटी में रहते हैं। तब वे वहां जाकर उनको अनेक उपदेश देकर अपने संग वीरसिंह में लाये एवं कई दिन के उपरान्त उन्हें एक पाठशाला स्थापित करादी। कालीकान्त बड़े भले मनुष्य थे। शिशुगणों को शिक्षा देने की विशेष रूप से प्रणाली जानते थे एवं शिशुगण भी आन्तरिक भक्ति व स्नेह करते थे; इस कारण छोटे छोटे बालक सर्वदा उनके निकट रहने की तथा निवास करने की इच्छा करते थे। इस प्रकार वे सब के साथ सौजन्य प्रकाश करते थे। स्थानीय लोग कालीकान्त चट्टोपाध्याय की आन्तरिक भक्तिव श्रद्धा करते थे। एवं सभी उनको गुरु महाशय कहते थे। कालीकान्त के निकट ईश्वरचन्द्र ने कुछ दिन

गुरु से विद्या ग्रहण करके बङ्गला भाषा की बारहखड़ी की शकल खीचना सीखा।

उसी समय में उनका हस्ताक्षर उत्तम होगया था। इसी समय में उन्होंने प्लीहा और वायुरोग से अत्यन्त कष्ट पाया। वीरसिंह में किसी प्रकार आरोग्य लाभ न कर सके इसलिये इनके नाना पातुलग्राम निवासी राधामोहन विद्याभूषण ने अपने घर ईश्वरचन्द्र उनके छोटा भाई और माता को संग लेगये। वहां खानाकुल में कृष्ण नगर के सन्निकट कोठेरा ग्राम में जो उत्तम वैद्य रहते थे उनमें से एक चतुर वैद्य को बुलाकर शास्त्रमत से चिकित्सा कराई। राधामोहन विद्या-भूषण के यत्न व कविराज रामलोचन की सुचिकित्सा से उन्होंने उस रोग से रक्षा पाई। बाल्यकाल में वे माता के साथ जब तब पातुलग्राम में जाते थे। राधामोहन विद्या-भूषण व उनके मातृ-वर्ग उनको आन्तरिक चाहते थे इस लिये उन्होंने यावज्जीवन राधामोहन के परिवार समूह का यथेष्ठ स्नेह व श्रद्धा से मासिकव्यय निर्वाहार्थ प्रवन्ध किया था। प्रायः ६ मास पातुल ग्राम में रह कर सम्पूर्ण रूप से आरोग्य हो जाने पर वीरसिंह में आकर वे फिर से पाठशाला में अध्यय करने को बैठे। बाल्यकाल में वे अत्यन्त चञ्चल थे। ५। ।६। ७। ८ वर्ष की अवस्था में नित्यप्रति कालीकान्त चट्टोपाध्याय की पाठशाला में जाने के समय

मथुरामोहन मंडल की माता पार्वती व पत्नी सुभद्रा को चिड़ाने के विचार से रोज उनके द्वार पर मलमूत्र त्याग करते थे। मथुरा की स्त्री सुभद्रा और जननी पार्वती उस विष्ठा को रोज अपने हाथ से उठाती थीं यदि किसी दिन मथुरा की स्त्री सुभद्रा विरक्त होकर कहतीं। ओ दुष्ट ब्राह्मण नित्यप्रति तुम पाठशाला जाने के समय हमारे द्वार पर पेशाव आदि करते हो, अब आज से फिर ऐसा यदि घृणित कार्य करोगे तो तुह्मारे गुरु महाशय और तुम्हारी आजी से कहकर तुमको दंड दिलाऊंगी। यह सुनकर सुभद्रा का ससुर बहू को ऐसा कह कर समझा देता था कि यह बालक सहज नहीं है। इसके पितामह ने १२ वर्ष विरागी हो तीर्थ क्षेत्र में जप तप किया है। वे साक्षात ऋषि तुल्य हैं। उनके मुख से सुना है कि यह बालक अद्वितीय शक्ति सम्पन्न होगा। अतएव तुम नाराज न हो, मैं स्वयं इसका मलमूत्र उठाय कर फेका करूंगा। भविष्यति में यह बालक कौन है सो तुम्हें आगे मालूम होगा। बाल्यकाल में वे धान्य के खेत के निकट होकर जाते समय बाल लेकर चर्वण करते २ जाते थे। सहसा एक जौ की बाल वे लेकर खा रहे थे कि वह गले में जाकर अटक गया जिससे मृत्युप्राय हो गये। तब जल्दी से दादी ने उनके कष्ट से गले में अङ्गुली देकर जौ की फुनगी निकाल ली। तब उनके प्राण में प्राण

आये कालीकान्त ने नाना प्रकार से यत्न और स्नेह कर विद्या सिखाने में कुछ भी त्रुटि नहीं की। वे अपने संतान की अपेक्षा उनको अधिक चाहते थे। गुरु महाशय तीसरे पहर दूसरे विद्यार्थियों को छुट्टी देते थे। केवल उनही को अपने निकट रख सन्ध्या के उपरान्त पहाड़े और अंक गणितादि की शिक्षा देते थे। अधिक रात्रि हो जाने पर नित्य स्वयं गोदी में लेकर गृह में दादी के निकट पहुंचा देते थे। गुरू महाशय एक दिवस सन्ध्या के समय ठाकुरदास से बोले कि आप के पुत्र को अद्वितीय बुद्धिमान व श्रुतिधर कहने पर भी अत्युक्ति नहीं होती। पाठशाला में जो सीखना पड़ता है वह सब मैंने खूब अच्छीरीति से पढ़ा दिया है। इसलिये अब ईश्वर को यहां से कलकत्ते लेजाना उचित है। अपने निकट रख इसे अङ्गरेज़ी शिक्षा देना अच्छा होगा। यह बालक सामान्य बालक नहीं है। बड़े २ बालकों की अपेक्षा इसकी शिक्षा अति उत्तम हुई है और हस्ताक्षर जैसा हुआ है उससे यह पाथी लिख सकेगा। उस काल में बङ्गला छापाखाना प्रायः नहीं था। जिस का हस्ताक्षर उत्तम होता था वे ही विद्यार्थी संस्कृत पुस्तक हाथ से लिखते थे।

हस्ताक्षर अच्छा होने पर वे सब से आदर पाते थे। इस कारण सब विद्यार्थी अपने हस्ताक्षर सुन्दर करने के हेतु

विशेष यत्न किया करते थे। उस समय इस देश में विवाह करने के पहिले विद्यार्थी का हस्ताक्षर देखते थे। हस्ताक्षर अच्छा होने के उपरान्त विवाह करने की इच्छा करते थे ईश्वरचन्द्र को कलकत्ते लेजाने का नाम सुनकर माता जी ऊंचे स्वर से रोदन करने लगीं।

उस समय इस प्रदेश में लिखना पढ़ना सीखने के लिये कलकत्ते जाने की रीति न थी। ब्राह्मण लोग कोई २ बाल्य-काल में पाठशाला में पढ़ते थे। अधिक वयस होने पर विदेश की पाठशाला में अध्ययनार्थ यात्रा करते थे। कोई २ ज़िमी-दारी सरिश्ते के कागज पत्र लिखने की शिक्षा प्राप्त करते थे ठाकुरदास ने सन् १८२६ ईसवी में मैं गुरुमहाशय काली-कान्त चट्टोपाध्याय को सङ्ग लेकर कलकत्ते की यात्रा की। कलकत्ता वीरसिंह से प्रायः २६ कोस पूर्व्व है उस समय में यहां से कलकत्ता जाने का कोई उत्तम मार्ग नहीं था। अधिकतर मार्ग में डाकुओं का ज्यादे भय रहता था। प्रायः बीच २ में बहुत लोग ठगों के हाथ पड़कर प्राणगंवाते थे इसलिये विशेष सावधानी से जाना पड़ता था। घाँटाल रूपनारायण नदी होकर जल मार्ग से नौका द्वारा कलकत्ते जाने का उपाय था सही किन्तु डाकुओं के भय से जलमार्ग द्वारा जाने में कोई मन से इच्छा न करता था। निदान पाँव पैदल ही जाना पड़ा। ईश्वरचन्द्र इतनी दूर पथ न चल

सकेंगे यह जानकर आनन्दराम को सँग लिया जब चलने में समर्थ हुए तब कहीं २ वह बालक गोद में कभी कंधेपर और कभी पीठ पर ले चलेगा। प्रथम दिवस गृह से ६ कोश अन्तर पातुलग्राम में राधामोहन विद्याभूषण के मकानपर विश्राम किया दूसरे दिन भर के उपरान्त सन्ध्या के समय वहाँ से १० कोश अन्तर सिन्धुपुर ग्राम में रामचन्द्र चट्टोपाध्याय के गृह पहुंचे। तीसरे दिवस प्रातः श्याखालाग्राम के प्रान्त भाग में जो थकी सड़क राजमार्ग शालिका पर्य्यन्त गयी है उसी पथ से चलते समय ईश्वरचन्द्र ने मार्ग में माइल स्टोन देखकर पूछा "बाबा यह पत्थर कैसा मिट्टी से पुता है और इसपर लिखने के समान चिन्ह क्यों हैं इसपर पिताने कहा "इसको माइल स्टोन कहते हैं। इसपर अंगरेजी भाषा के नम्बर लिखे हैं। एक माइल (अर्द्धकोश) अन्तरपर एक २ ऐसा पुता हुआ पत्थर है श्याखाला से शालिकाघाट पर्य्यन्त ऐसे पत्थरों पर अंगरेज़ी अङ्क देखकर वे अंगरेजी १ से दस तक संख्या चीन्ह गये। कालीकान्त चट्टोपाध्याय और पिता जी ने मध्य में जगदीशपुर में जिस स्थान पर माइल स्टोन था वह स्थान नहीं दिखाया। इसका कारण कि अक्षर चीन्ह लिये हैं या नहीं यह जानने के अभिप्राय से दोनों ने युक्ती की थी। ईश्वरचन्द्र बोले इसका पूर्व्व पत्थर में देखना भूल गया हूं। तब कालीकान्त बोले ईश्वरचन्द्र तुमको भुलाने के हेतु

हमने ऐसा किया है जिससे तुम बता सको। इससे हम परम आल्हादित हुए। श्याखाला-ग्राम से शालिका का गङ्गाघाट १० कोश है। सन्ध्या के समय सब कोई वहां उपस्थित हुए एवं गङ्गापार होकर बड़े बाज़ार के बाबू जगदुर्लभ सिंह के गृह पहुंच गये। दूसरे दिन प्रातःकाल ठाकुरदास जगदुर्लभ बाबू के एक अङ्गरेज़ी बिल को ठीक कर रहे थे। वहां ईश्वरचन्द्र बैठे हुए बोले बाबा मैं इसको ठीक कर सकता हूं यह सुन कर उक्त सिंह बोले ईश्वर! तुमने अंग्रेजी अंक कैसे जाने इस पर वे बोले क्योंकि बाबा और कालीकान्तजी ने जो श्याखाला से शालिका घाट पर्य्यन्त पत्थरों पर अङ्कित माइल स्टोन दिखलाये हैं। इसी से अङ्गरेजी अङ्कों की एक से १० पर्य्यन्त संख्या सीखी है। इसी से जोड़ लगा सकता हूं। यह सुन कर उक्त सिंहने कई बिल ठीक कर देने के हेतु ईश्वर को दिये। उन बिलों का ठीक कर देना सही हुआ। ऐसा देखकर कालीकान्त चट्टोपाध्याय उनको गोद में लेकर और मुख चुम्ब के बोले तुम चिरंजीवी हो मैंने तुम्हारे प्रति आन्तरिक यत्न के सहित परिश्रम किया है वह आज हमारा सार्थक हुआ वहां पर जो बैठे थे उन्होंने कहा बन्द्योपाध्याय महाशय! आपको इस बुद्धिमान पुत्र को भली भांति लिखने पढ़ने की शिक्षा देना आवश्यक है।

इस पर पिता जी बोले इसको मैं हिन्दू कालेज में पढ़ाऊंगा.

यह मन में स्थिर किया है। यह सुन कर वह सब बोले आप मासिक १०) रुपया वेतन पाते हैं। इसमें हिन्दू कालेज में कैसे अध्ययन करावेंगे यह सुनकर उन्होंने उन लोगों को उत्तर दिया पुत्र के कालेज को मासिक वेतन ५) रु० दूंगा और गृह को ५) रु० भेजूंगा यह सुन कर कोई कोई बोले चोरवगान के अंगरेज़ी स्कूल में भरती करने से सामान्य वेतन लगेगा इस विषय में महीनों तक विचार होता रहा। जगदुर्लभसिंह की भगिनी राईमणिदासी और उनका परिवार ईश्वरचन्द्र को बहुत छोटा देख कर अत्यन्त चाहती थीं। पिता जी चाकरी के उपलक्ष में प्रातःकाल से ६ बजे रात तक कार्य्य समाप्त कर गृह में आते थे और रसोई बना कर दोनों पिता पुत्र भोजन करते थे। आफ़िस से गृह आकर रात्रि १० बजे के समय रसोई आदि बना और भोजन कर दोनों सोने जाते प्रातःकाल से आठ वर्ष का बालक ईश्वरचन्द्र प्रायः सारा दिन इन दयामयी दोनों स्त्रियों की दया के ऊपर निर्भर रह कर परदेश में निवास करता रहा। वे स्नेह पूर्वक खाने को देती थीं और कथा वार्ता में भुलाये रखती थीं। ईश्वरचन्द्र जिस समय अपनी माता आई की याद करते थे उस समय वे दोनों स्त्रियां भुला कर व कई प्रकार के किस्से कहानियां कह कर बहिलाय लेती थीं। एवं देश के हेतु वा माता के लिये नहीं याद करने देती थीं। उक्त राईमणि दासी और जग दुर्लभसिंह को पत्नी के

दया गुण से ही शैशव काल में ईश्वरचन्द्र का बहुत उपकार हुआ था। उनके ऐसे दया और चतुरता प्रकाश न करने पर वे कलकत्ते में कभी नहीं रह सकते थे, यद्यपि उन दयामयी स्त्रियों का नाम स्मरण होने पर ईश्वरचन्द्र के चक्षुओं में जल आ जाता था। जगदुर्लभ वाबू के गृह के पास ही वाबू शिवचन्द मल्लिक के मकान में एक पाठशाला थी। वहां रामलोचन अध्यापक के निकट पढ़ने के लिये उनको वैठा दिया। कार्तिक और अगहन दो मास तक उनके निकट रहकर लिखने पढ़ने की शिक्षा पाते रहे। ये रोज़ पिता से कहते थे वीरसिंह में कालीकान्त की पाठशाला में जैसा उपदेश वा शिक्षा हमने पाई है वैसी शिक्षा पाना इनके निकट दुर्लभ है इस पाठशाला में जाकर हमें केवल वैठा ही रहना पड़ता है यहां सर्कार महाशय मुझे नया कुछ भी नहीं सिखाते जो देश में सीखा है। यहां भी वही विषय सिखाते हैं। अतएव जिसके निकट नया विषय सीख सकूं मुझे उसी गुरु महाशय के निकट नियुक्त कीजिये नहीं तो विदेश में रहने की क्या आवश्यकता है? इसके कई दिन उपरान्त वे उदर रोग में बीमार होकर बेहोसी में होकर चार पाई ही पर करने लगे। और कोई दूसरा आदमी न होने के कारण ठाकुरदास को ही मलमूत्र अपने हाथ सफ़ा करना पड़ता था। कभी २ ऐसा होता था कि सीढ़ी पर मल त्याग कर देते थे तब सब सीढ़ी में मलही मल फैल जाता

था। पिताजी अपने हाथ से इसे भी साफ़ करते थे। उस समय में यद्यपि वे बालक थे तथापि मन में सोचते थे कि बाबा इतना क्यों करते हैं। कई दिन उपरान्त दादी पौत्र की ऐसी बीमारी का समाचार पाकर तुरंत कलकत्ते में जा कर वहां से पौत्र को देश में ले आई। देश में ३।४ मास रह कर उस रोग से छुटकारा पाया। तब फिर दूसरी दफ़े जेठ महीने में ठाकुरदास घर गये और उन्हें लिवा कर फिर कलकत्ते चले! तब उस समय मार्ग में उनसे पिता ने पूछा क्यों ईश्वर! अबकी तुम घर से बराबर कलकत्ते चल सकोगे कि नहीं? यदि न चला जाय तो एक जने को सङ्ग लेलें। वह बीच में तुमको गोदी में उठा लेगा। इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि इस बार मैं चला जाऊंगा सङ्ग में किसी के लेने की आवश्यकता नहीं है। दूसरे दिन उन्होंने रविवार को सवेरे भोजन कर पिता के साथ ६ कोश मार्ग चल कर पातुल ग्राम में राधामोहन विद्या-भूषण के घर में निवास किया। फिर दूसरे दिवस वहां से प्रायः ८ कोश जमीन चल के तारकेश्वर के पास रामनगर ग्राम में अपनी छोटी बुआ के घर की तरफ़ यात्रा की। राजबलहाट की दूकान में उपस्थित हो दोनों ने कुछ भोजन किया। वहां से उठने के समय वे बोले बाबा मैं अब और नहीं चल सकूंगा पिता ने कितना ही समझाया इस पर वे बोले देखिये हमारे पाँव फूल गये हैं अब पाँव न रख सकूंगा। पिता बोले

थोड़ा चलो आगे चल कर तरबूज़ तुम्हें ले दूंगा यह कह कर भुलाना आरम्भ किया किन्तु वे किसी भाँति एक पैर भी न चले। तब ठाकुरदास बोले यदि न चल सकोगे तो तुमने घर पर नौकर को सङ्ग लेने से क्यों मना किया था। यह कह कर प्रहार किया। इस पर वे रोदन करने लगे। तो तू यहीं रह मैं चला, यह कह कर पिता ने कुछ दूर जाकर पीछे देखा कि वे उसी स्थान पर बैठे हैं एक पैर भी नहीं चले तब क्या करें लाचार फिर कर उनको कन्धे पर बिठाके ले चले। थोड़ी दूर चलने के उपरान्त बोले अब थोड़ा चलो आगे की दूकान में तरबूज़ ले दूंगा। ठाकुरदास अत्यन्त निर्बल और क्षीण शरीर के मनुष्य थे इसलिये आठ वर्ष के बालक को कन्धे पर लेकर उन्हें चलना कुछ सहज बात नहीं थी इस कारण कुछ दूर जा कर कन्धे से उन्हें उतार दिया वहां तरबूज़ खिलाने पर भी चलने में असमर्थ हुये। पिता कभी काँधे पर कभी गोदी में करके ले चले अनन्तर वे सन्ध्या के समय रामनगर के रामतारक मुखोपाध्याय के गृह में उपस्थित हुये।

उनके दोनों पैर की पीड़ा भली होने के लिये बुआ अन्न-पूर्णा देवी ने उष्ण तेल से मालिस कर दिया दूसरे दिन वहां रहे। एक दिवस वहां रहने से पाँव की पीड़ा कुछ कम हो गई। दूसरे दिन प्रसन्नता से बैद्यबाटी के मार्ग में चलने लगे। एवं वहां से नौकर के कंधे पर सन्ध्या के समय

कलकत्ते के बड़े बाज़ार के मकान पर उपस्थित हुये । कई दिन के उपरान्त पिता ने स्थिर किया कि हमारे वंश के पूर्व पुरुषों ने संस्कृत अध्ययन कर विद्या दान किया है। केवल हमको दुर्भाग्य वश बाल्यावस्था से ही गृहस्थी प्रतिपालन करने के लिये तुरन्त फल देने वाली अंगरेज़ी विद्या सीखना पड़ा है। ईश्वर के संस्कृत अध्ययन करने पर देश में पाठशाला कर दूंगा। यहां जगद्दुर्लभसिंह के गृह में अनेक पण्डित वार्षिक रुपया लेने आते थे उनमें पटलडांगा के गवर्मेंट-संस्कृत कालेज के व्याकरण की ३ श्रेणी के अध्यापक पंडित गङ्गाधर तर्कवागीश महाशय के साथ पिता की जान पहिचान थी। उनसे परामर्श करने पर उन्होंने कहा कालेज में पढ़ने से ५, ६ मास के उपरान्त परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर सहज ही में ५) रु० मासिक पावेगा। देश की पाठशाला में पढ़ाने से धीरे २ विद्या अध्ययन करने में अधिक काल लगेगा। कालेज में मुग्धबोध व्याकरण अध्यययन कर तीन वर्ष के मध्य में व्याकरण में व्युत्पत्ति उत्पन्न कर काव्य की श्रेणी में प्रविष्ट हो सकेगा। दूसरे उस समय में पातुलग्राम निवासी राधामोहन विद्याभूषण के चाचा के पुत्र मधुसूदन वाचस्पति संस्कृत कालेज में अध्ययन करते थे, एवं मासिक पाते थे। पिता के उक्त वाचस्पति से पूछने पर उन्होंने भी यही राय दी कि ईश्वर को संस्कृत कालेज में भरती करादो।

पिता ने उनके उपदेश के अनुसार ईश्वरचन्द्र को अंगरेज़ी विद्यालय में नियुक्त न कर संस्कृत कालेज में ही पढ़ाना सब प्रकार से अच्छा समझा।

विद्यालय चरित।

अंगरेजी सन् १८२९ के जून मास की पहिली तारीख़ को ठाकुरदास ने ईश्वरचन्द्र को कलकत्ता के पटोलडांगा गवर्न्मेन्ट संस्कृत कालेज में व्याकरण की तृतीय श्रेणी में भरती करा दिया उस समय उनकी अवस्था ९ वर्ष की थी। इसके पूर्व में उनकी संस्कृत शिक्षा का आरम्भ नहीं हुआ था।

हालीशहर के निकटस्थ कुमार हट्टा निवासी गङ्गाधर तर्क वागीश उस श्रेणी के पंडित थे। ये विद्यार्थियों को शिक्षा देने की भली भांति रीति नीति जानते थे। विशेषतः अल्प वयस्क बालकों को शिक्षा देने में तर्क वागीश महाशय विलक्षण परिश्रम करते थे, इस कारण कालेज के व्याकरण के अन्यान्य शिक्षकों की अपेक्षा तर्क वागीश महाशय ने विशेष कीर्त्ति लाभ की थी। अनेक लोगों का विचार था कि तर्क वागीश के निकट अध्ययन करने से छात्र गण की व्याकरण में अच्छी योग्यता होती है। ठाकुरदास रोज सवेरे ९ बजे ईश्वरचन्द्र को भोजन कराके पटलडाङ्गा के कालेज

में व्याकरण की तृतीय श्रेणी में बैठाकर तर्क वागीश महाशय से मिलकर फिर प्रायः २ मील चलकर बड़े बाज़ार जाकर भोजन करके आफ़िस को जाते थे। फिर सायं ४ बजे के समय आफ़िस से कालेज जाकर ईश्वरचन्द्र को संग ले आते थे तदुपरान्त अपने कार्य्य को जाते थे। इस प्रकार ६ मास गत होने पर ईश्वरचन्द्रने कालिज का मार्ग पहिचान लिया और क्रमशः साहस भी हुआ तब फिर ठाकुरदास संग नहीं जाते थे। कालेज प्रविष्ट होने के ६ मास उपरान्त परीक्षोत्तीर्ण होकर मासिक ५) रु० की वृत्ति पाई। मधुसूदन वाचस्पति महाशय छोटी अवस्था में सर्व्वदा उनको ज्ञान सिखाया करते थे इस कारण वे वाचस्पति को कभी विस्मृत नहीं हुये थे। अभीतक उनके पुत्र सुरेन्द्र का वे प्रतिपालन करते रहे। बड़ा बाज़ार से संस्कृत कालेज में अध्ययन करने के लिये जब मार्ग में ईश्वर छाता लगाकर जाते थे तब लोग मन में सोचते थे कि एक छाता चला जा रहा है। वे बाल्यकाल में अत्यन्त नाटे क़दके थे दूसरे लोगों की अपेक्षा उनका मस्तक ऊंचा और बड़ा था। ऐसा शिर आज तक देखने में नहीं आया। इस कारण बाल्यकाल में उनको कालेज के अनेक लोग "यशोहर की कोई" कहते थे (यशोहर ज़िले की कोई मछली ८। १० दिन नौका में आकर कलकत्ते में गमले में कुछ दिन रहती थी इस

हेतु उस मत्स्य का माथा मोटा एवं अपर अंश पतला होता था) कोई २ जशोर की कोई न कहकर "कसूरे जोई" कहते थे। यह सुनकर वे क्रोध करते थे। क्रोधोदय होने पर उस समय वे साफ़ २ बोल नहीं सकते थे। क्योंकि बाल्यकाल में तोतले थे। वे कालेज में व्याकरण श्रेणी में प्रविष्ट होकर,तर्क वागीश महाशय के निकट रोज़ जाकर पढ़आते थे। उसे रोज रात्रि में अपने पिता के निकट वह सुनाना पड़ता था। पुत्र दिन के मुख से जो व्याकरण का पाठ श्रवण करते थे १०। १५ दिन के उपरान्त वे जो कहीं भूल जाते उसे पिता तुरन्त बता देते थे। पुत्र के निकट रोज श्रवण कर पिता को भी व्याकरण में परिज्ञान उत्पन्न हो गया था। वे जानते थे कि पिता जी व्याकरण भली भाँति जानते हैं। कारण कि कालेज में तर्कवागीश महाशय जैसा बतलाते हैं पिता भी वैसाही बताते थे यथार्थ में ठाकुरदास संस्कृत व्याकरण पूर्व्व में कुछ नहीं जानते थे।

पिता रोज रात्रि को ९ बजे उपरान्त नौकरी से गृह आते थे, जिस दिन रात्रि में ईश्वर को पढ़ते देखते थे उस दिन वे परम आल्हादित होते थे। जिस दिन आकर देखते कि दीपक जल रहा है और वे सो रहे हैं, उस दिन क्रोधान्ध होकर उनको बहुत मारते थे जब कभी वे मारते थे उस दिन जगदुर्लभसिंह की भगिनी और उनकी पत्नी कहतीं कि ऐसे छोटे बालक को यदि तुम इस कठोरता से मारोगे

तो आप का इस गृह में रहना नहीं होगा। किसी दिन प्रहार से बालक मर जायगा हम सब को विपद् में पड़ना होगा। उनकी ऐसी धमकी देने से मारना कम होगया था। रात्रि को पढ़ने के समय निद्रा आनेपर वे दीपक में से सरसों का तेल लेकर चक्षुओं में लगा लेते थे। चक्षुओं में तैल लगने से आंख में जलन होती थी। जिससे निद्रा नहीं आती थी पिता के रात्रि ९ बजे के समय गृह आकर भोजन बनाने पर दोनों भोजन करके शयन करते थे। शेष रात्रि में पिता की निद्राभंग होने से वे रोज ईश्वरचन्द्र को फुटकर श्लोक मुखाग्र सिखाते थे इस प्रकार उन्होंने पिता के निकट प्रायः २०० दो सौ संस्कृत श्लोकों की शिक्षा पाई थी। वे अत्यन्त बुद्धिमान थे सुतरां अन्यान्य बालकों की अपेक्षा भली भाँति पाठ बोल सकते थे, शब्द का रूप बता सकते, सन्धि बोल सकते, व धातु रूप कह सकते थे, इस कारण अध्यापक तर्कवागीश महाशय सब छात्रों की अपेक्षा उनको अत्यन्त चाहते थे तर्क वागीश महाशय सब उनसे सन्तुष्ट होकर नित्य एक एक करके कविता सिखाते थे। एवं उस कविता का अन्वय और अर्थ कह देते थे। तर्कवागीश महाशय के भी निकट उन्होंने दोसे संस्कृत श्लोकों की शिक्षा याद की थी। व्याकरण श्रेणी में तीन वर्ष के समय में उन्होंने परीक्षा में उत्तम रूप से पारितोषिक पाया था एक वर्ष और एक बालक ने उत्तम पारितोषिक पायी है यह देखकर उनके मन में इतना क्षोभ उत्पन्न हुआ कि कालेज में अब अध्ययन नहीं

करूंगा। अपने देश में जाकर दरिउपुर में विश्वनाथ सार्वभौम फूफामहाशय की पाठशाला में अध्ययन करूंगा यह स्थिर किया किन्तु पिता के, तर्क वागीश महाशय के और मधुसूदन वाचस्पति के अनुरोध से कालेज परित्याग न कर सके। उस वर्ष उत्तम पारितोषक न पाने का कारण यह था कि उस वर्ष "प्राइस साहेब" परीक्षक थे। साहेब भली भांति वात नहीं समझ सकते थे। ईश्वरचन्द्र जो कुछ उत्तर देते थे वह भली प्रकार सोच समझ कर उत्तर देते थे किन्तु वह निर्मूल हो जाता था। जिस वालक ने विना विचारे झटपट उत्तर दिया वह चाहे भला हो या वुरा ही क्यों न होवे साहेव ने उसी को वुद्धिमान जानकर पारितोषक दिया था। ईश्वरचन्द्र वाल्यकाल में अत्यन्त हठी थे। स्वयं जो भला जानते वही करते थे; दूसरे मनुष्य का कहना नहीं मानते थे। बड़े लोगों के उपदेश देने पर भी वह गला टेढ़ा कर स्थिर भाव से खड़े रहते थे। इसलिये पिता को वुरा लगता था तव वे मारते थे। किन्तु तिस पर भी नहीं सुनते थे। अपना हठ रखने के हेतु शैशवकाल से दृढ़ प्रतिज्ञ थे। गर्दन सीधी नहीं करते थे। इस कारण पिता कहते थे हमारे पिता ने जो तुम्हारी टेढ़ी गर्दनवाले साड़ियां (नादिया) के साथ तुलना की थी वह सत्य है अतएव पिता उनका स्वभाव समझ कर चलते थे। जिस दिन सफ़ेद वस्त्र नहीं होता था उस दिन कहते कि आज सफ़ेद कपड़ा पहन कर कालेज जाना होगा। वेहठात्

कहते । नहीं ! आज मैला कपड़ा पहिन कर जाऊंगा । जिस दिन कहते आज स्नान करना होगा । सुनते ही वे कहते आज स्नान नहीं करूंगा । पिता प्रहार करके भी स्नान नहीं करवा सकते थे । संग लेकर टकशाल के घाट में उतार देने पर भी खड़े रहते । तब पिता उन्हें मार कर बरजोरी से स्नान करवाते थे । उनकी जो इच्छा होती थी शैशवकाल से मृत्यु पर्य्यंत उन्होंने वही किया । उन्होंने बाल्यकाल से मरण पर्य्यन्त अपनी प्रतिज्ञा रखी एवं असाधारण उन्नति का लाभ किया । मुझ से क्लास में और कोई भली शिक्षा प्राप्त न कर सके इसी ज़िद के ऊपर लिखना पढ़ना सीखने में उन्होंने बहुत दिन आन्तरिक यत्न किया । यहां तक कि शैशवकाल में भी प्रायः सारी रात जाग कर अभ्यास किया करते थे । प्रायः पिता से कहते थे । रात्रि १० बजे के समय आहार कर शयन करूंगा आप रात्रि १२ बजने पर मुझे उठा देना नहीं तो मेरा पढ़ना नहीं होगा । पिता आहार के उपरान्त २ घन्टे बैठे रहते थे । निकटस्थ अर्मनी गिर्जा के घंटे की आवाज सुन कर उनकी निद्रा खुला देते थे वे उठ कर समस्त रात्रि पाठाभ्यास करते थे । इसीप्रकार अत्यन्त परिश्रमकर के बीच बीच में वे अत्यन्त कठिन पीड़ा में ग्रस्त हो जाते थे । व्याकरण श्रेणी में तीन वर्ष छ मास रहे किन्तु तीन वर्ष के बीच में ही व्याकरण समाप्त किया था शेष ६ मास अमरकोष मनुष्य वर्ग और भी काव्य पञ्चम सर्ग पर्य्यन्त का पाठ किया था ॥

११ वर्ष की अवस्था में उनका उपनयन संस्कार हुआ। द्वादश वर्ष की अवस्था में वे साहित्य श्रेणी में प्रविष्ठ हुये, उस समय जैगोपाल तर्कालङ्कार महाशय साहित्य शास्त्र की श्रेणी में अध्यापक थे। सुना है तर्कालङ्कार महाशय ने काशी धाम में बाल्यकाल से साहित्य शास्त्र का अध्ययन कर विशेष योग्यता प्राप्त की थी। गद्य पद्य रचना विषय में किसी ने उस समय तक उनकी बराबरी नहीं कर पाई थी। इसी कारण संस्कृत कालेज स्थापन के समय में विल्सन साहब ने उनको काशी से बुलवा कर इस पद पर नियुक्त किया था। विल्सन साहब प्रथम बनारस कालेज में काम करते थे। उपरान्त कलकत्ते में संस्कृत कालेज के अध्यक्ष के पद पर नियुक्त हुये। काशी में साहब के साथ तर्कालङ्कार महाशय की विशेष रूप से जान पहिचान थी; इस लिये संस्कृत कालेज के साहित्य श्रेणी के शिक्षक पद में नियुक्त करने के हेतु काशी से उनको बुलाया था। बङ्गाल देश में काव्य शास्त्र में इनके समान पण्डित और कोई नहीं था। ईश्वरचन्द्र के साहित्य श्रेणी में प्रवेश करने के समय मुक्ताराम विद्यावागीश मदनमोहन तर्कालङ्कार आदि अनेक विद्यार्थी इस साहित्य श्रेणी में प्रविष्ट हुये थे। उन सब विद्यार्थियों की अपेक्षा यह थोड़ी उम्र के थे; इस लिये पहले ही तर्कालङ्कार महाशय ने कहा कि ईश्वर अभी बालक है काव्य क्या समझ सकेगा? इस लिये उन्होंने भट्टिकाव्य के कई एक पद्यों का अर्थ करने को

कहा। उन्होंने जैसा अर्थ व अन्वय किया। अन्य कोई छात्र वैसा अन्वयार्थ न कर सका। इसलिये तर्कालङ्कार महाशय उनसे अति प्रसन्न हुये थे। तर्कालङ्कार महाशय बङ्गाल देश के समस्त पण्डितों की अपेक्षा काव्य शास्त्र में सुपण्डित थे यह सत्य था, किन्तु विद्यार्थियों को पढ़ाने के समय जिस कविता का अन्वय वह करते थे उसका अर्थ नहीं कहते थे। जिसका अर्थ व भाव कहते थे उसका अन्वय नहीं करते थे। सुतरां जिन सब विद्यार्थियों ने व्याकरण में विशेष व्युत्पत्ति लाभ न कर पायी थी उनके पक्ष में तर्कालङ्कार महाशय के निकट अध्ययन करना लाभदायक नहीं होता था। ईश्वरचन्द्र की व्याकरण में अच्छी योग्यता हो गई थी। "भट्टिकाव्य" के प्रथम से पंञ्चम सर्ग तथा ५०० उद्भट कविता कण्ठस्थ थी; इसलिये उनके निकट शिक्षा विषय में इनकी कोई असुविधा न हुई। प्रथम वर्ष रघुवंश, कुमार-सम्भव, राघव-पाण्डवीय, प्रभृति साहित्य ग्रन्थ अध्ययन कर वार्षिक परीक्षा में सबसे उत्तम हो उन्होंने प्रधान पारितोषिक प्राप्त किया था। उन दिनों प्रायः पुस्तक पारितोषिक में देने की ही चाल थी। द्वितीय वत्सर में माघ, भारवि, मेघदूत, शकुन्तला, उत्तर-चरित, विक्रमोर्व्वशी, मुद्राराक्षस, कादम्बरी, दशकुमार-चरित, प्रभृति कण्ठस्थकर साहित्य शास्त्र में उन्होंने विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। उस समय रविवार को कालेज बन्द नहीं होता था। अष्टमी व प्रति पदा को संस्कृत पढ़ने का निषेध था इसलिये उक्त दोनों दिन

कालेज बन्द रहता था, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या, व पूर्णिमा को नया पाठ बन्द रहता था। इस कारण उस दिन संस्कृत रचना की शिक्षा दी जाती थी। किसी दिन संस्कृत से बङ्गला, किसी दिन बङ्गला से संस्कृत का अनुवाद कराया जाता था और विद्यार्थियों की अपेक्षा ईश्वरचन्द्र उत्तम अनुवाद कर सकते थे। विशेषतः उनकी व्याकरण की भूल वा वर्णाशुद्धि कभी नहीं होती थी। इस कारण अध्यापक तर्कालङ्कार महाशय उनको अत्यन्त चाहते थे, ईश्वरचन्द्र काव्य वा नाटक जो अध्ययन करते थे प्रायः उसे वे कण्ठस्थ कर लेते थे। उनके ऐसी स्मरणशक्ति किसी भी विद्यार्थी की न थी। नाटक की प्रकृत भाषा प्रायः उनको कण्ठस्थ थी। इस कारण जैसी संस्कृत भाषा कहने में वे समर्थ थे वैसी ही धारा-प्रवाह (प्राकृत) भाषा भी कहते थे। इस प्रकार उनकी असाधारण बुद्धि देख कर पण्डित लोग कहते थे कि ईश्वर, श्रुतिधर और दीर्घ जीवी होने पर अद्वितीय पुरुष होगा। साहित्य श्रेणी के द्वितीय वर्ष की परीक्षा में सर्वोत्कृष्ट होकर उन्होंने सर्व्व प्रधान पारितोषिक पाया था। उस समय में यह नियम था कि जिस छात्र का हस्ताक्षर भला होता वह लिखने के कारण स्वतन्त्र एक पारितोषिक पाता था। क्लास के बीच में ईश्वरचंद्र का हस्ताक्षर भला था।

इसलिये वह प्रति वर्ष ही लिखने में पारितोषिक पाते थे। उस समयमें प्रायः ऐसी संस्कृत पुस्तकें मुद्रित न थीं जैसी कि अब हैं

उन्होंने सुविधा के अनुसार अनेक संस्कृत पुस्तकें अपने हाथ से लिखी थीं। इसी समय ठाकुरदास ने अपने आठ वर्ष के मध्यम पुत्र दीनवन्धु को लिखने पढ़ने की शिक्षा देने के विचार से मानस से कलकत्ते में बुला लिया। उस दिन से ईश्वरचन्द्र को स्वय दोनों समय सब के लिये भोजन बनाना पड़ता था। गृह में कोई दासदासी न थी। दो घड़ी रात रहते निद्राभङ्ग होने पर कुछ देर पुस्तकावृत्ति कर, टकसाल घाट भागीरथी में स्नान करके आने के समय बड़े बाज़ार में काशीनाथ बाबू के बाज़ार में जाते थे। वहां से आलू-बैगन-परवर आदि तरकारी ख़रीद कर ले आते थे। गृह पहुंच कर प्रथम तो हरदी गर्म मसाला आदि पीसते थे, फिर चूल्हा बाल कर रसेदार तरकारी और मूंग की दाल बनाय फिर सुन्दर मसाले से छोंक थे। बाद को चावल और थोड़ीसी रोटी बनाय चारों आदमी भोजन करते थे। बासन और चौका भी उन्हीं को करना पड़ता था। बासन मांजने में, चौका लगाने में उनकी अंगुली के अग्र भाग के नखून घिस गये थे। हरदी पीसने के कारण हाथ में हरदी के दाग पड़ गये थे। भोजन करते २ यदि एक भी चावल छोड़ा जाता या पत्तल में कुछ उच्छिष्ट पड़ा रहता तो पिता उसी समय थप्पड़ मारते थे। इस कारण भोजन के समय कोई जूठा नहीं छोड़ते थे। उन्होंने बाल्य काल में पिता के निकट इन सब बातों की शिक्षा पाई थी एवं बराबर भोजन का पात्र साफ़ करके आहार करते थे।

इसी कारण उनके जूठे बर्तन में बहुत लोग श्रद्धा पूर्वक भोजन करने की इच्छा रखते थे। उन्होंने मझले भाई दीनबन्धु को संस्कृत कालेज की द्वितीय श्रेणी में रखवा दिया। उस समय में हरिप्रसाद तर्क पञ्चानन उक्त श्रेणी के अध्यापक थे। दीन-बन्धु बाल्यकाल में लिखने पढ़ने में सुस्ती तो ज़रूर करते थे; किन्तु वह अद्वितीय बुद्धिमान थे। बहुत आदमी दीनबन्धु को श्रुतिधर कहते थे। अधिकता यह थी कि संस्कृत कविता एक वार श्रवण करने पर उसे दीनबन्धु कंठस्थ कर लेते थे। पिता अपना कार्य्य समाप्त कर रात्रि ९ बजे के समय गृह आते थे। ज्येष्ठ व मध्यम पुत्र दोनों मन लगा कर पाठाभ्यास करते हैं यह देख कर वे बड़े प्रसन्न होते थे। यदि कहीं दीपक जल रहा है पुस्तक खुली है और वे दोनों भाई सो रहे हों तब तो देखते ही क्रोधान्ध होकर बहुत मारते थे। मार से दोनों ज़ोर २ से चिल्ला २ कर रोते थे इनका रोदन सुन कर गृह-स्वामी, सिंह महाशय का परिवार अत्यन्त दुःखित होता था एवं वे स्पष्टाक्षरों में कहते कि छोटे २ ऐसे सुकुमार बालकों को इस प्रकार प्रहार करना उचित नहीं है। ऐसे प्रहार से किसी दिन यह मर जांयगे। इसलिये आपको हम वारम्वार कहते हैं कि छोटे २ बालकों को ऐसी निर्दयता से मारोगे तो हम लोग आपको यहां रहने नहीं देंगे। इससे मारना पीटना बहुत कम हो गया था। पिता जी रात्रि ९ बजे के समय गृह में आय कर रसोई बनाते थे। रसोई और

भोजन करके रात्रि ग्यारह बजे के उपरान्त सब शयन करते थे। पुनर्व्वार शेष रात्रि में निद्रा भंग होने पर। पिता के निकट जो सब उद्भुज कविता सीखी थी उसकी आवृत्ति वह करते थे। सूर्य्योदय होने के उपरान्त कालेज के पाठ को मुखस्थ करते थे, तदुपरान्त गङ्गा स्नान करके प्रातः सन्ध्या करते थे इसके उपरान्त रसोई बना कर भोजन कर विद्यालय चले जाते थे, सन्ध्या को इसी रीति से संध्या आदि करते थे लोग जानते थे कि उनको सन्ध्या याद है; किन्तु सन्ध्या समस्त वह भूल गये थे। सन्देह में पड़ कर एक दिन कालिदास बन्धोपाध्याय चाचा महाशय ने उनसे कहा मैं सन्ध्या भूल गया हूं विशेषतः हम वृद्ध लोग हैं तुमने संस्कृतध्ययन किया है। तुम्हें याद होगी। अतएव एकबार तुम सन्ध्या का पाठ करो मैं सुनने की इच्छा करता हूं। वे सन्ध्या भूल गये थे कुछ भी न कह सके। चाचा ने पिता जी से कहा कि "ईश्वर सन्ध्या करना सब भूल गया झूठमूठ हाथ हिलाया करता है आदि" पिता जी ने यह सुनकर बहुत पीड़ा सन्ध्या न सीखने से जल खाने को नहीं दूंगा ऐसा करने पर उन्होंने सन्ध्या की पोथी देख कर सन्ध्या याद करली। माता जी चरखा से सूत कात कर दोनों पुत्रों के लिये वस्त्र बनवाय कर कलकत्ते भेजती थीं दोनों भ्राता वही मोटा वस्त्र पहन कर अध्ययनार्थ पटोल डाङ्गा के कालेज में जाते थे।

इस समय वैसे चरखे के कते हुये सूत से बने हुए मोटे

वस्त्र उड़ीसा देश के देशीय कहार वा जङ्गलवासी (मेहतर) को पहिरते देखा जाता है। वैसे ही ईश्वरचन्द्र को भी बराबर मोटा वस्त्र पहिनते देखा है उन्होंने कभी महीन वस्त्रधारण नहीं किया। वे जो कुछ मासिक रुपये पाते थे पिता को देते थे। इस प्रकार उनकी उन्नति होने पर पिता बोले कि तुह्मारे इस रुपये से मैं जमीन मोल लूंगा। कालेज का अध्ययन शेष होने पर देश में पाठशाला खोल दूंगा। देशवासी लोग जिस से लिखने पढ़ने की शिक्षा पा सकें वह तुम करना। तुम्हारी आमदनी के रुपयों से जो ज़मीन खरीदी जायगी उसकी आमदनी से गरीब विद्यार्थियों को कुछ महीनों में व्ययनिर्वाहार्थ के लिये दिया जायगा। यह स्थिर कर कौसिया ग्राम आदि में कई बीघा ज़मीन उन्होंने खरीदी थी। कुछ दिन उपरान्त पिता ने कहा अपने रुपये से अपनी आवश्यक पुस्तकादि तुम खरीदो इस पर उन्होंने बहुत सी पोथियां हाथ की लिखी मोल ली। वे समस्त पुस्तकें अब तक उनकी प्रसिद्ध लाइब्रेरी में सुशोभित हो रही हैं। वे व्याकरण और काव्य शास्त्र में अद्वितीय पंडित हो गये थे। जब देश 'बीरसिंह' में आते थे उस समय में किसी के गृह में विवाहादिक कोई कार्य होने पर निमन्त्रणार्थ मनुष्य उन्हीं के निकट कविता बनवाते थे। निमन्त्रण में आये हुए पण्डित लोग वह कविता देखकर कहते कि यह कविता किस की बनाई है? यह सुन कर जिनके यहां कार्य था वे कहते थे इस बालक ने रचना की है। आये हुए

पण्डित लोग उनके साथ व्याकरण का विचार करते थे, विचार के समय में वे संस्कृत भाषा में ही बोलते थे। इस लिये देशवासी पण्डित लोग अचम्भित होते थे। क्रमशः देश भर में प्रचार हो गया कि वन्द्योपाध्याय महाशय का पुत्र ईश्वर-चन्द्र अद्वितीय पण्डित हुआ है। क्योंकि वे वात चीत के समय में संस्कृत भाषा में बातें करते थे और देशीय पण्डित लोग संस्कृत भाषा में वात करने में सम्पूर्ण रूप से समर्थ नहीं थे।

देश के वहुत से लोगों ने उनको कन्यादान देने के लिये कितने ही इच्छा करते थे। पहिले तो रामजीवनपुर के आनन्द-चन्द्र अधिकारी सम्बन्ध करना स्थिर कर गये थे, उपरान्त उनकी सम्प्रदाय विचित्र थी इसी कारण उनको सव अधिकारी कहते थे ईश्वरचन्द्र ने उनके गृह विवाह करने में अनिच्छा प्रकाश की क्योंकि वे धन शाली मनुष्य थे और हमारे घर में साबित ईंटें भी दिवाल में नहीं लगी है। इसलिये हम उनके घर विवाह नहीं करेंगे। जब अधिकारीजी ने यह सुनी तो उन्होंने भी सम्बन्ध तोड़ दिया। पीछे जगन्नाथ पुर के चौधरियोंके गृह सम्बन्ध स्थिर हुआकिन्तु कई कारणों से उस स्थान में भी विवाह न हुआ। शेष में क्षीरपाई ग्राम के निवासी शत्रुघ्न भट्टाचार्य्य महाशय ने आकर कहा ईश्वर विद्वान मनुष्य है। उत्तम पात्र को कन्यादान करने की मुझे इच्छा है। उन दिनों इस देश में क्षीरपाई ग्राम सव ग्रामों में श्रेष्ठ माना जाता था। उस समय कल का कपड़ा नहीं था।

उक्त ग्राम में अनेक देशों के लोग आकर कपड़े का व्यवसाय करते थे। पश्चिम से हिन्दुस्तानी महाजनों ने आकर वहां रेशमी व सूती कपड़ों के व्यवसाय के लिये कोठियां बनवाईं थीं। भट्टाचार्य्य महाशय क्षीरपाई ग्राम में क्षमता, मान्य और सत्मार्ग व्यय में श्रेष्ठ गिने जाते थे। विशेषतः उनकी कन्या भी अति सुन्दरी और सुलक्षणा और सर्वगुण सम्पन्ना थी। और उसकी जन्म पत्री के गृह भी उत्तम पड़े थे। भट्टाचार्य्य महाशय ने कहा हमारी यह कन्या लक्ष्मी है। जन्मपत्री के फलादेश से आप जानेंगे कि, यह कन्या जिसको दान की जायगी सर्व प्रकार उसकी अचला लक्ष्मी होगी। फिर भट्टाचार्य्य महाशय ने ठाकुरदास से कहा। वन्द्योपाध्याय तुम्हारे धन नहीं हैं यह मुझे अच्छी तरह से मालूम है, परन्तु हमने यह सुना और देखा है कि, तुम्हारा पुत्र विद्वान है इसी कारण अपना प्राणों से प्रिय तनया "दिनमयी" को तुम्हारे पुत्र के कर में समर्पण करता हूं। विवाह करने की ईश्वरचन्द्र को आन्तरिक इच्छा न थी, किन्तु यावज्जीवन लिखना पढ़ना सीखूंगा और अपनी शक्ति के अनुसार देश का उपकार करूंगा उनकी यह आन्तरिक इच्छा थी। परन्तु पिता के भय से विवाह करने में वह सम्मत हुये थे और क्षीरपाई निवासी शत्रुघ्न भट्टाचार्य्य महाशय की दिनमयी नाम की आठ वर्ष सुलक्षणा परम सुन्दरी पुत्री के साथ उनका पाणिग्रहण कार्य समाप्त हो गया। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में वे अलङ्कार शास्त्र की श्रेणी में प्रविष्ट हुए।

उस समय प्रेमचंद्र तर्कवागीश महाशय अलङ्कार के अध्यापक थे। वे व्याकरण साहित्य और अलङ्कार शास्त्र में विशिष्ट रूप से योग्यता रखते थे व संस्कृत गद्य पद्य रचना विषय में उनकी असाधारण क्षमता थी। ये अत्यन्त परिश्रमी थे इस कारण सब मनुष्य उनकी प्रशंसा करते थे उस समय ईश्वरचन्द्र तो सब बालकों की अपेक्षा छोटे वयस्क और (नाटे) थे। अलङ्कार श्रेणी में ऐसे छोटे बालक को अध्ययन करते देख अन्यान्य लोग आश्चर्य्यान्वित होते थे।

उन्होंने एक वर्ष में ही साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश रस गंगाधर प्रभृति अलङ्कार ग्रन्थ अध्ययन कर लिये और उन्होंने सालाना परीक्षा में उत्तीर्ण कर प्रथम पारितोषिक को पाया। उस समय उनको कालेज में मासिक ८) रु० की वृत्ति प्राप्त हुई। फिर वे स्मृति श्रेणी में प्रविष्ट हुये। साधारण पंडित गण २। ३ वर्ष में जिस प्राचीन स्मृति शास्त्र की परीक्षा देते थे उस परीक्षा में वह मास में ही उत्तीर्ण होने की इच्छा से उन्होंने पिता से कहा, मैं ६ मास पाकादि काम्य्र न कर सकूंगा। उस दिन से उनके भाई दीनबन्धु को ही दोनों समय पाकादि काय्र्य करना पड़ता था। दीनबन्धु की अवस्था उस समय १० वर्ष की थी। अविश्राम ६ मास दिन रात परिश्रम कर वे लाक मेटी की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। अभी तक उनके डाढ़ी मोछों का उदय नहीं हुआ था। उसी १७। १८ वर्ष की बाल्यावस्था में ही परीक्षा में उत्तीर्ण होकर लाक मीटी का

सार्टीफिकट ले लिया। कुछ दिन के पीछे त्रिपुरा ज़िला के जज साहब का पद शून्य होने पर ईश्वरचन्द्र ने प्रार्थनापत्र उस कार्य्य में नियुक्त करने के लिये भेजा तब गवर्मेन्ट ने स्वीकार कर उन्हें नियोगपत्र दिया कि तुम शीघ्र ही त्रिपुरा में जाकर कार्य्य में प्रवृत्त हो। किन्तु पिता की असम्मति के कारण वहां इनका जाना न हुआ। इस समय की तरह उस समय थियेटर व सर्कस आदि न थे। उस समय में केवल भारत और कृष्ण लीला होती थी। उनको कविता सुनने का अत्यन्त शौक था कहीं भी कविता होती तो वे सुनने जाते थे। जब देश जाते थे उस समय सम वयस्क भाई बन्धुओं को लेकर कविता का गान करते थे। भाई बन्धुओं को बीमार होने पर माता के अनुकरण से वहीं उनके गृह जाकर रोगी शुश्रूषादि कार्य्य में प्रवृत्त होते थे ऐसे कार्य्य करने में उनको कुछ भी घृणा न होती थी। यही नहीं वरञ्च कोई भी मनुष्य को बीमार यदि वे सुन पाते थे तो तुरन्त वहां जाकर उनकी चिकित्सा करते थे तथा अपने हाथ से उसका मलमूत्र साफ़ करते थे, नितान्त रोगी के सेवा में लिप्त रह कर वे समस्त रात्रि जागरण करते थे। जिन रोगियों के निकट जाने में तथा स्पर्श करने में मनुष्य डरते थे; उन रोगियों की सेवा कार्य्य में वे निर्भय व निशंकोचित चित्त से लिप्त रहते थे। वे बाल्यकाल से ही परम दयालु थे। ऐसे गुणों से ही कालेज के विद्यार्थी लोग और अध्यापक तथा मित्र लोगों के वे परम मित्र बन गये थे।

सायङ्काल कालेज के निकट विप्रदास वन्द्योपाध्याय की मिठाई की दूकान पर छुट्टी के उपरान्त वह जलपान करते थे। कालेज के जो छात्र सन्मुख होते उन सब को मिष्ठान वे खिलाते थे। वे जो ८) रु० मासिक वृत्ति पाते थे वह दूसरे बालकों के सायङ्कान के जलपान में ही खर्च कर डालते थे। जिन बालकों के वस्त्र जीर्ण देखते थे कालेज के द्वारवान से रुपया उधार ले उनको वस्त्र (खरीद) देते थे। बड़े बाज़ार के निवास स्थान में जो सहपाठी थे। उनको जलपान कराते इस कारण सब लोग यह जानते थे कि ईश्वरचन्द्र धनशाली हैं। पूजा की छुट्टी में देश आने पर जिन प्रतिवासी पड़ोसियों का पीड़ित होना सुनते उनके गृह सर्वदा जाते एवं उनकी सेवा कार्य्य में स्वतः प्रवृत्त होते। और दूसरे लोग रोगी की सेवा में नियुक्त होने पर घृणा प्रकाश व क्लेश प्रकाश करते थे। किन्तु ईश्वरचन्द्र महाशय किसी जाति वाले की पीड़ा होने पर संतुष्ट चित्त से उसकी सेवा करने में अत्यन्त सन्तोष प्रकाश करते थे। इस कारण उस समय में देश के लोग उन को दयामय कहते थे। सामान्य बिड़ाल या श्वान के मरने पर भी उनके चक्षुओं में जल आ जाता और किसी के रोना सुनने से आप रो देते थे पूजा के अवकाश में ग्राम के गदाधरपाल ब्रजमोहन चक्रवर्ती व छोटे २ भ्रातृगण के सहित कबड्डी खेलते अन्य किसी प्रकार की क्रीड़ा में आसक्त नहीं होते थे। कबड्डी खेलने में अत्यन्त श्रम होता है उससे उदरामय प्रभृति

रोग आरोग्य होते हैं इस अभिप्राय से वे इस खेल में प्रवृत्त होते थे और कभी २ मदनमोहन मंडल के साथ लाठी भी खेलते थे। देश के जिन लोगों का दिन कटना कठिन देखते उनको अपनी शक्ति के अनुसार सहायता देने में विमुख नहीं होते थे। अन्यान्य लोगों के पहिरने के कपड़े न रहने पर आप अंगोछा पहिन अपने वस्त्र उसको बाँट देते थे। बाल्यकाल में देश जाकर कृपकगणों के साथ धान काटते भ्रातृगण से कहते सब खेतों में चलो वहां से धान ढोकर लाना होगा। मजूरों के साथ धान ढोने में वे परम आह्लादित होते थे। अर्थात् परिश्रम करने से हटते नहीं थे। १६ वर्ष की अवस्था में वेदान्त की श्रेणी में प्रवृष्ट हुए वह पूज्यवाद शम्भुचन्द्र वाचस्पति महाशय उस समय वेदान्त शास्त्र के अध्यापक थे। वे उनको अत्यन्त चाहते थे उनको जो कुछ युक्ति वा परामर्श करना होता। उन्हीं के साथ वे करते थे। वेदान्त में पातञ्जल, या साङ्ख्य ग्रन्थ के जिस जिस स्थल में पाठ का सन्देह होता या असलग्न (वेजोड़) जान पड़ता उस विषयमें सन्देह भञ्जनार्थ उनके सहित वादानुवाद करते। इसपर वे आन्तरिक सन्तुष्ट होकर कहते कि तुम साक्षात् ईश्वर हो। उस समय पिता अष्टम वर्ष की अवस्था में विद्या शिक्षा की इच्छा से शम्भुचन्द्र को कलकत्ते ले आये। कई दिन पीछे ईश्वर चन्द्र ने उन को संस्कृत कालेज के व्याकरण की तृतीय श्रेणी में प्रविष्ट करादिया उस समय उस श्रेणी में गङ्गाधार तर्क बागीश

गङ्गाधर तर्क वागीश महाशय अध्यापक थे। तीन भाई पिता और दयालचंद्र मुखोपाध्याय प्रभृति सब के लिये दोनों समय रसोई का कार्य्य ईश्वरचन्द्र ही करते थे। जिस गृह में पाक करते थे उसके अति निकट स्थान में दूसरे का पैखाना था। इसलिये पाठशाला में बैठते ही अत्यन्त दुर्गंधि आती थी। इस समय म्युनिसिपेलटी के बन्दोबस्त से पाखानों में वैसी दुर्गन्धि नहीं रहती है। किन्तु उस समय कलकत्ते में म्युनिसिपेलटी नहीं थी। मार्ग में मैला फेकने पर भी कोई कुछ न कहता। पाक गृह में अत्यन्त अन्धेरा था। एक द्वार के अतिरिक्त कोई खिड़की न थी। पाकशाला अत्यन्त छोटी थी एवं वह चिंउटा और चिंउटियों से परिपूर्ण रहता था। प्रायः मच्छर दो चार चिंउटी रसोई में गिर पड़ती, दैवात उनकी थाली में एक चिंउटा गिर पड़ा प्रकाश करने वा फेकने पर भ्रातृगण वा पिता महाशय घृणा करेंगे भोजन न करेंगे इस डर से उन्होंने समस्त चिंउटियां भोजन के सहित पेट में रख लीं भोजन के कुछ समय पीछे चिउँटा खाने की बात प्रकाशित की। यह सुन कर सब उपस्थितगण आश्चर्य करने लगे। जिस स्थान में आहार करने बैठते उसके समीप वाले नदी या (मोरी) से कॅचुये और अन्यान्य कीड़े भोजन पात्र के निकट आते थे इस लिये वे एक लुटिया जल डाल कर कीड़ों को हटा देते थे।

उस समय जगद्दुर्लभसिंह के संमुख तिलकचन्द्र घोष का सोनो चांदी का नकासी का कारखाना था तिलकचन्द्र घोष और उनके पुत्र राजकुमार घोष बड़े भले पुरुष थे। वे ईश्वर चन्द्र को अत्यन्त चाहते थे उस गृह के ऊपरी गृह में चाचा कालीदास बन्ध्योपाध्याय महाशय रात्रि में शयन करते थे उसके नीचे गृह में ईश्वरचन्द्र महाशय रात्रि में पढ़ने वाली पुस्तकें पढ़ कर अधिक रात्रि में शयन करते थे। सन्ध्या के समय से उनकी शय्या पर शम्भुचन्द्र भी शयन करते थे। एक दिन शम्भूचन्द्र ने पेट में दर्द होने के सबब से सन्ध्या के समय असावधानी से वस्त्र में ही मल त्याग कर दिया था। उसने सोचा जो मैं कह दूंगा भोजन मुझे तो न करने देगें इस डर से उसने कहा नहीं। ईश्वरचन्द्र अधिक रात्रि होने पर अधिक नींद आने से गये। प्रातःकाल जगने पर देखा कि उनकी पीठ छाती और हाथ आदि में मल लगा है। किन्तु शम्भुचन्द्र से उन्होंने कुछ न कहा अपना शरीर धोकर सब शय्या और कपड़े बिछौने अपने हाथ से कुंआ पर धोया। वे बाल्यकाल से ही पिता माता के प्रति भक्ति एवं भ्राता और भगनी से यथेष्ट स्नेह करते थे। ऐसी पितृ मातृ भक्ति और भ्रातृ स्नेह अन्य कोई नहीं कर सकता। माता का भी सब पुत्रों की अपेक्षा उनके प्रति आन्तरिक स्नेह था।

वाचस्पति महाशय वृद्ध अवस्था में दूसरा विवाह करने के लिये अत्यन्त यत्न करने लगे। विवाह करना उचित है या नहीं इस विषय में एक दिन एकान्त में उन्होंने ईश्वरचन्द्र के साथ सलाह की। वे बोले ऐसी अवस्था में आप का विवाह करना उचित नहीं है । वाचस्पति आप ने उनकी सलाह किसी प्रकार न मानी। उस दिन से वे क्रोध वश वाचस्पति के गृह नहीं जाते थे। वाचस्पति महाशय, उन दिनों कलकत्ते के अद्वितीय धनशाली और सम्भ्रान्त राम-दुलाल सर्कार के पुत्र छातूबाबू लाटूबाबू के साधारण सभा के पंडित थे, नड़ाल के रामरतन बाबू भी वाचस्पति महाशय का अतिशय मान करते थे। इन दोनों धन पात्रों ने मिलकर उनका सम्बन्ध स्थिर करके एक परमसुन्दरी कन्या के साथ वाचस्पति महाशय का विवाह करा दिया, वाचस्पति महाशय ईश्वरचन्द्र को पुत्र की तरह स्नेह करते थे। इस लिये एक दिन कहा। ईश्वर! अपनी मां को एक दिन भी देखने नहीं गये यह सुन वे रोने लगे। पीछे एक दिन वह जबरन उन्हें अपने गृह ले गये। वाचस्पति महाशय की नूतन विवाहिता पत्नी को देखते ही वे रोने लगे। वाचस्पति महाशय ने उनको अनेक प्रकार से उपदेश देकर सान्त्वना की। विवाह के कुछ ही दिन पीछे वाचस्पति महाशय ने परलोक गमन किया। ईश्वरचन्द्र शम्भुनाथ, वाचस्पति के देश के किसी व्यक्ति को

देखते ही उसकी श्रद्धा व भक्ति करते थे।

सन् १८३७ई० में यह आज्ञा हुई थी कि, स्मृति न्याय वेदान्त इन तीन प्रधान श्रेणी के छात्र गण को वार्षिक परीक्षा के समय संस्कृत गद्य व पद्य रचना करनी होगी। उनमें जिसकी रचना सब से उत्तम होगी वह गद्य रचना में १००) और पद्य रचना में १००) रु० पारितोपिक पावेगा। एक ही दिन में दोनों प्रकार की रचना का समय निर्द्धारित हुआ। दस बजे से एक बजे तक गद्य रचना एवं एक से चार बजे पर्य्यन्त कविता रचना का समय नियत था गद्य पद्य परीक्षा के दिवस दस बजे के समय सब छात्रों ने परीक्षा स्थल में उपस्थित हो लिखना आरम्भ किया। अलङ्कार शास्त्र के अध्यापक प्रेम-चन्द्र तर्कवागीश महाशय ईश्वरचन्द्र को परीक्षा स्थल में न आया देख विद्यालय के तत्कालीन अध्यक्ष मार्शल साहब महोदय से कहा उन्होंने ईश्वरचन्द्र को वहां बलपूर्वक ले जा-कर एक स्थान में बैठा दिया। ईश्वरचन्द्र ने कहा महाशय मेरी रचना भली न होगी मैं लिख न सकूंगा? तर्कवागीश महाशय यह सुन नाराज हो बोले, जो लिख सको वही लिखो नहीं तो अध्यक्ष मार्शल साहब क्रोध करेंगे। ईश्वरचन्द्र बोले क्या लिखूं वे बोले "सत्यता पर आरम्भ करके लिखो"। तदनुसार वे लिखने में प्रवृत्त हुये। सत्य कथन की महिमा गद्य रचना का विषय था। उन्होंने उक्त विषय जो लिखा था

वह सबसे अच्छी निकली। उन्होंने सोचा था कि मेरा लिखना बोध होता है-भला नहीं हुआ किन्तु परीक्षक महाशयों ने सब छात्रों की रचना की अपेक्षा उनकी रचना को सर्वोत्तम स्थिर किया था। निदान उन्होंने गद्य रचना का पारितोषिक १००) रु० प्राप्त किया।

इसके पीछे पिता ने मझिले पुत्र के विवाह का कार्य्य समाप्त किया। इस कार्य में पिता के ऊपर बहुत ऋण हो गया था। घर के खर्च में कुछ भी कम न कर सके इसलिये कलकत्ता का खर्च कम कर दिया। दूध आदि कुछ दिन काल के लिये बन्द हो गया। साम को जल खाने के लिये आधे पैसे की चने की दाल लाकर भिंजाई जाती थी। आधे पैसे के बताशे आते थे, यहाँ सायंकाल में सब को जल खाने को मिलता था। यही भीजी चने की दाल थोड़ी सी और रात्रि को कुम्हड़े की तरकारी के साथ सब का भोजन होता था। उस समय में ऐसा कष्ट सहकर अपने हाथ से रसोई आदि बनाकर भी ईश्वरचन्द्र ने जैसे लिखना पढ़ना सीखा था, इस समय के बालक उत्तम २ भोजन खाकर एव उत्तम २ कपड़े पहिरकर भी वैसे यत्न पूर्वक लिखना पढ़ना नहीं सीख सकते। उसी वर्ष कार्तिक मास में कलकत्ता बड़ा बाज़ार के बाबू जगद्दुर्लभ सिंह के जिस गृह में निवास था वह गृह प्रायः ३।४ मास के निमित्त त्याग करना पड़ा। इसका कारण यह

था कि जगद्दुर्लभ सिंह ने भूल से छुपाया हुआ कम्पनी का कागज़ मोल खरीदा था इससे उन्हें राजदंड मिला। उनका गृह कुछ दिन के निमित्त पुलिस कर्मचारियों के द्वारा घिर गया था। इसलिये ईश्वरचन्द्र के सहित दोनों बालक दो महीने तक पातुलग्राम निवासी गुरु प्रसाद मुखोपाध्याय के गृह रहकर कालेज में अध्ययन करने लगे। उस समय ईश्वरचन्द्र ने सब छात्रों की अपेक्षा पद्य में अति उत्तम संस्कृत कविता रचना की। इस लिये शिक्षा समाज ने उनको १००) रु० पुरस्कार प्रदान किया था। उपरोक्त जगद्दुर्लभ सिंह मुकद्दमा कर ऋणी हो गये, उनके मकान में भाड़ा न देकर बहुत दिन तक बैठे ही रहते थे। उन्होंने अत्यन्त दुःखित अवस्था में निर्मल जिसमें कि ईश्वरचन्द्र का निवास था वह तनस्तुकदार मानक हिन्दुस्थानी को भाड़े पर दे दिया। उस भाड़ा के रुपये से उक्त सिंह के गृहस्थी का खर्च चलने लगा। इसलिये ईश्वरचन्द्र को उस गृह के निचले घर में निवास करना पड़ा। बड़े बाज़ार के निम्न नीचे वाले गृह में बड़ी सील रहती है। उसमें शयन करने से ईश्वरचन्द्र ने विषम रोग में बीमार पड़कर अनेक कष्ट भोग किये थे। बहुत दिन में अनेक उपाय करने पर ईश्वरचन्द्र अच्छे हुये। उस समय ईश्वरचन्द्र वेदान्त की श्रेणी से न्याय शास्त्र की श्रेणी में प्रविष्ट हुये। उस समय में तीनचंद्र शिरोमणि महा-

'शय, दर्शन शास्त्र के अध्यापक पद पर नियुक्त थे। उस समय में वे बङ्गदेश के मध्य में अद्वितीय दर्शन शास्त्रवेत्ता थे। उनके साथ शास्त्रार्थ करने में समस्त शास्त्र वेत्ताओं को परास्त होना पड़ा था। उनके निकट ईश्वरचन्द्र ने एक वर्ष भाषा-परिच्छेद सिद्धान्त मुक्तावली, कुसुमाञ्जलि, शब्द-शक्ति प्रकाशिका, प्रभृति प्राचीन न्याय ग्रन्थों का अध्ययन किया। द्वितीय वार्षिक परीक्षा के समय दर्शन शास्त्र में सब छात्रों की अपेक्षा अच्छा दरजा पाया; इस कारण दर्शन शास्त्र में सब छात्रों की अपेक्षा उत्तम कविता रचना में सबसे उत्तम कविता लिखकर १००) रु० पुरस्कार प्राप्त किया। नीमचन्द्र शिरोमणि महाशय का उसी समय देहान्त होगया। इनकी मृत्यु से महाशय कुछ दिन तक बहुत उदास रहते थे। कई मास तक सर्व्वनाम न्यायवागीश ने दर्शन श्रेणी के छात्रगणों को शिक्षा दी किन्तु वे भली भांति न्याय नहीं पढ़ा सके थे। ईश्वर चन्द्र महाशय ने उद्योगी होकर अध्यक्ष मार्शल साहेब महोदय के निकट इस विषय का निवेदन किया। इस लिये सेक्रेटरी साहिब की आज्ञा हुई कि,कर्म प्रार्थी दर्शन शास्त्रवेत्ता पंडित गणों की परीक्षा करें। परीक्षा में जो सबसे श्रेष्ठ होंगे वे ही दर्शन श्रेणी के अध्यापक पद पर नियत किये जायं। नाना स्थानों के पंडित गणों ने इस पद के लिये प्रार्थना की। किन्तु जैनारायण तर्क पञ्चानन ने पहिले आवेदन पत्र नहीं

लिखा। ईश्वरचन्द्र ने शलकिया में तर्कपञ्चानन की पाठशाला में कई बार जाकर उन के साक्षर करवा के आवेदन पत्र स्वयं मार्शेल साह के हाथ में लाकर दिया। तर्क पञ्चानन महाशय के प्रति उन की आन्तरिक श्रद्धा व भक्ति थी। विशेषतः जिस समय में अलंङ्कार श्रेणी में वह अध्ययन करते थे उसी समय उन के प्रति तारानाथ तर्क वाचस्पति महाशय के गृह शास्त्रालाप हो कर परस्पर स्नेह उत्पन्न हुआ था।

जिस समय उन्हों ने ला कमेटी की परीक्षा दी थी। उसी वर्ष तर्क पंचानन महाशय ने भी वह परीक्षा दी थी। कर्म्म प्रार्थी दर्शन शास्त्र वेत्तागण के मध्य में जयनारायण तर्क पञ्चानन महाशय परीक्षा में सब से अच्छे हुये थे। इसलिये परीक्षक महाशयों ने जयनारायण तर्क पञ्चानन को कालेज के दर्शन शास्त्र का योग्य अध्यापक पद दिया था। तर्क पक्षियों ने उन को उस पद पर नियुक्त किया ईश्वरचन्द्र ने इन के निकट ३ वर्ष एवं नीमचन्द्र शिरोमणि के निकट १ वर्ष ऐसे ४ वर्ष परिश्रम कर प्रायः शास्त्र अध्ययन किया था। इस से अन्यान्य पंडित लोग अवाक हो गये थे। कारण कि दूसरे लोग १०-१० वर्ष में जो शास्त्र शेष नहीं कर सकते। ईश्वर ने वह इतने थोड़े समय में कैसे शेष किया? जिस समय दर्शन श्रेणी में वह अध्ययन करते थे उस समय देश जाने पर कितने ही लोगों के साथ उन का शास्त्रार्थ होता था। सब उन

से संतुष्ट हो कर उन को आशीर्वाद देते थे। एक समय बीरसिंह ग्राम के कृष्णचन्द्र विश्वास ने उन के आने पर अपने माता का श्राद्ध किया। उन्हों ने ईश्वरचन्द्र से श्राद्ध में आचार्य्यों को बुलाने के लिये संस्कृत में निमन्त्रपत्र बनवाया था। श्राद्ध के दिन कितने ही स्थानों से पंडित मंडली आई थी। किस ने ऐसी कविता की है यह जानने के लिये पंडित लोग व्याकुल हो रहे थे। पीछे ईश्वरचन्द्र को उस कविता का रचयिता जान कर सब उन के साथ शास्त्रार्थ करने लगे अंत में ईश्वरचन्द्र से सब हार गये। अब शेष में कुराण ग्राम निवासी सुविख्यात दर्शन शास्त्रवेत्ता राममोहन तर्कसिद्धान्त के साथ प्राचीन ग्रंथों का शास्त्रार्थ हुआ विचार में तर्क सिद्धान्त महाशय की हार हुई यह सुन कर ठाकुरदास ने तर्क सिद्धान्त महाशय की पदरज लेकर ईश्वरचंन्द्र के मस्तक पर लगाई और अनेक प्रकार की सुंदर चीज़ों को देकर तर्क सिद्धान्त महाशय की प्रशंसा की। तर्क सिद्धान्त महाशय ने विचार में पराजित हो कर ठाकुरदास से कहा कि तुम्हारे पुत्र ईश्वर ने जैसी काव्य अलंकार स्मृति और न्याय शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की है ऐसी शिक्षा वंङ्गदेश में कोई नहीं कर सकता आगे भी और कोई शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे ऐसी आशा भी की नहीं जाती है। ईश्वरचन्द्र के प्रति सरस्वती की कृपादृष्टि हुई है नहीं तो ऐसी अल्प अवस्था में इतना शास्त्र सीखना असम्भव है"

किसी २ पंडित ने सब के सामने यह कहा कि—"ईश्वर के दादा जी बहुत दिन तक तीर्थ क्षेत्र में तपस्या करते थे वह स्वप्न देखकर देश में आये ईश्वर के जन्म होते उनकी जिह्वा में कुछ मन्त्र उन्होंने लिख दिया है इसी कारण देव शक्ति के बल से समस्त शास्त्रों में यह पार दर्शी हो गये हैं"। कोई २ पण्डित कहते थे कि, "ईश्वर के मातामह (नाना) ने मुर्दे का साधन किया है उनके ही आशीर्वाद के प्रभाव से इतनी छोटी अवस्था में यह ऐसे पंडित हो गये हैं"। जिस समय में ईश्वरचन्द्र न्याय-शास्त्र की श्रेणी में अध्ययन करते थे उस समय व्याकरण की द्वितीय श्रेणी के अध्यापक, पण्डित हरिप्रसाद तर्क पञ्चानन जी हुये थे। कालेज के अध्यक्ष महाशय ईश्वरचन्द्र को उपयुक्त पंडित जानकर २ मास के निमित्त प्रतिनिधि पद पर नियुक्त किया था। उन्होंने प्रतिनिधि पद पर नियुक्त रह कर ८०) प्राप्त किये। वे रुपये पिता के हाथ में दे करके कहा—इन रुपयों से आप अपने पितृ लोगों को उद्धार करने के लिये गया धाम आदि तीर्थ पर्य्यटन की यात्रा करो। बालक पिता को तीर्थ क्षेत्र में जाने का उपदेश देता है इस बात पर आत्मीय बन्धु बान्धव सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए। ठाकुरदास जी उस समय में कलकत्ता जोड़ा शांको निवासी ‹बा० रामसुन्दर मलिक के आफ़िस में नौकरी करते थे। यद्यपि रामसुन्दर मलिक अति धार्मिक पुरुष थे।

तथापि उन्होंने ठाकुरदास को उस समय तीर्थ पर्य्यटन को जाने से निषेध किया। इसी लिये पिता ने उनके रोकने से जाने का साहस नहीं किया इस लिये ईश्वरचन्द्र ने बाबू रामसुन्दर मल्लिक के गृह जाकर जिस प्रकार पिता गया जा सकें। इस प्रकार के धर्म्म विषयक उपदेश द्वारा रामसुन्दर बाबू को समझाया। वृद्ध रामसुन्दर बाबू बालक के मुंह से नाना प्रकार के हितकर उपदेश सुनकर बड़े ही प्रसन्न हुये। एवं ठाकुरदास को पितृ गया यात्रा के विषय में फिर मना नहीं कर सके। उस समय रेल का मार्ग नहीं हुआ था। इस लिये ठाकुरदास ने पैदल ही प्रस्थान किया।

उस समय मार्शल साहब ने संस्कृत कालेज के सेक्रेटरी का पद परित्याग किया। उस पद पर कलकत्ते की छोटी अदालत के जैदत्तबाबू नियुक्त थे। उस समय बङ्गालियों में इनके समान और किसी का अधिक वेतन नहीं था। यद्यपि दत्त बाबू संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ थे। तथापि राजकीय कर्म्मचारियों ने इनके हाथ में ही संस्कृत विद्यालय का समस्त भार अर्पण किया था। मधुसूदन तर्कालंकार इनके असिस्टेन्ट सेक्रेटरी थे। कालेज की द्वितीय वार्षिक परीक्षा के समय इस महाशय ने अग्नीध्र राजा की तपस्या के विषय में कई बातें लिख कर परीक्षार्थी छात्रगणों को इस विषय की कविता बनाने की आज्ञा दी ईश्वरचन्द्र ने उक्त विषय की कविता नहीं

बनाई। क्योंकि उनकी संस्कृत रचना नामक पुस्तक में वे सब पहिले मुद्रित हो चुकी थी। उस समय कालेज में निम्न श्रेणी के बालकगणों को एक घंटा भूगोल और अंक शिक्षा दी जाती थी। और उच्चश्रेणी के छात्रगणों को एक घण्टा आइन (नीति) की शिक्षा दी जाती थी। इन विषयों की शिक्षा देने के लिये बा० नवगोपाल चक्रवर्ती महाशय स्थिर किये गये थे। ईश्वरचन्द्र ने द्वितीय वार्षिक परीक्षा में दर्शन शास्त्र में सब से अच्छा दर्जा पाया था। इसलिये न्याय में १००), कविता बनाने में १००) क्लास में सबसे उत्तम हस्ताक्षर होने के कारण लिखने का पुरस्कार ८) और आईन की परीक्षा में सबसे ऊंचा दर्जा पाने के सबब से २५) रु० (जुमले) २३३) रु० पारितोषिक पाया था। पीछे ठाकुरदास तीर्थपर्यटन कर जल के मार्ग से कलकत्ते आये और वहां आते ही पुरस्कार के सब रुपये पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। काव्य-शास्त्र के अध्यापक जयगोपाल तर्कालंकार महाशय न्याय व स्मृति श्रेणी के छात्रों को बीच बीच में कविता बनाने को देते थे। कितने ही विद्यार्थी उनके सामने बैठ कर कविता रचना करते थे किन्तु ईश्वरचन्द्र वैसी छोटी मोटी कविता बनाने में कभी शामिल नहीं होते थे। वार्षिक परीक्षा में कविता का पारितोषिक पाने पर जयगोपाल तर्कालंकार ने ईश्वर से कहा अब मैं तुम्हारी कोई बात नहीं सुनगा।

आज तुमको मेरे सामने कविता बनानी पड़ेगी। अध्यापक के ऐसा कहने से और अत्यन्त अनुरोध करने से वे मन उन्होंने कविता बनायी। "गोपालाय नमोस्तुमे" इस समस्या को पूर्ति करने को तर्कालंकार महाशय ने सबसे कहा। ईश्वरचंद्र ने हंसी से पूंछा—महाशय! किस गोपाल के विषय में मैं कविता करूं? एक गोपाल तो हमारे सन्मुख ही उपस्थित हैं और एक गोपाल बहुकाल वृन्दावन में लीला करके अन्तर्ध्यान हो गये हैं? इन दोनों में से किसको कविता कराना आपका अभिप्राय है स्पष्ट २ कहिये? पूज्यपाद तर्कालंकार महाशय ईश्वरचन्द्र की ऐसी हास्ययुक्त बात सुन कर बड़े हंसे फिर कहने लगे कि तुम वृन्दावन वाले गोपाल की कविता बनाओ। ईश्वरचन्द्र महाशय ने उस विषय में पांच श्लोक लिखे थे। जयगोपाल तर्कालंकार उन पाचों श्लोकों को देख कर बड़े प्रसन्न हुए थे। हम अपने पाठकों के अवलोकन करने के लिये उन पाचों श्लोक को नीचे प्रकाश करते हैं।

श्लोक।

यशोदानन्द-कन्दाय, नीलोत्पल दलश्रिये।
नन्द गोपाल-बालाय गोपालाय नमोस्तुमे ॥
धेनुरक्षण-दक्षाय कालिन्दी-कुल चारिणे।
वेणुवादन-शीलाय गोपालाय नमोस्तुमे २ ॥
घन-पीत-दुकूलाय वनमाला-विलासिने।

गोपस्त्री प्रेम लीलाय गोपालाय नमोऽस्तुमे ३ ॥

वृष्णि-वंशावतंसाय कंसध्वंस विधायिने ।

दैत्य-कुल कालाय गोपालाय नमोऽस्तुमे ४ ॥

नवनीतैक-चौराय चतुर्व्वर्गैक-दायिने ।

जगद्ब्राण्ड-कुलालाय गोपालाय नमोऽस्तुमे ५ ॥

ईश्वरचन्द्र ने चार वर्ष दर्शन शास्त्र की श्रेणी में अध्ययन कर दर्शन में विशेष योग्यता प्राप्त की थी। जयनारायण तर्क पंचानन महाशय कभी २ कहदेते थे कि ईश्वर के समान बुद्धिमान विद्यार्थी हमारी दृष्टि में अभी नहीं आया है। इसको पढ़ाने के लिये दर्शन शास्त्र में हमें विशेष रूप से दृष्टि रखनी पड़ी थी इसे से दर्शन शास्त्र में हमारा विशेषरूप से अधिकार उत्पन्न हो गया है।

इसमें सन्देह नहीं है। पढ़ाने के समय ऐसा जान पड़ता था मानों कितने ही काल के पूर्व से उन सब शास्त्रों में अच्छी तरह से अधिकार था। नहीं तो चार वर्ष में दर्शन शास्त्र में ऐसा किसी का अधिकार नहीं हो सकता? उस समय बड़े बाज़ार के बाबू जगदुर्लभ सिंह के जिस गृह में हम लोग रहते थे उनकी अवस्था अत्यन्त हीन होने से उस मकान के समस्त गृह तनसुकदास हिन्दुस्थानी को भाड़े पर दे दिये गये थे। इसलिये जनानखाने के निचले भाग में सिंह बाबू ने उनको रहने को जगह दी थी। निम्न गृह में रहने के कारण ईश्वर-

चन्द्र महाशय वीमार हो गये वैद्य लोगों ने पिता से कहा कलकत्ता में नीचे के गृह में रहना रोगी के पक्ष में कदापि उचित नहीं है। निम्न गृह में सोने से पहले इन्होंने एक वार विषम रोग में वहुत कष्ट उठाय के आरोग्य लाभ किया था। तिस पर भी आप ऐसे गृह का परित्याग नहीं करते। ऐसे गृह में शयन करने से निश्चय ही काल का कवर वनना पड़ता है। रात्रि में समस्त शय्या पानी में भींगी हुई जान पड़ती है। अतएव जितनी शीघ्रता कर सकें आप इस गृह का परित्याग करें। इन सब कारणों से वड़ा वाज़ार का गृह छोड़ कर वहू वाज़ार के पंचानन तल्ला में आनन्दचन्दसेन के गृह में सव लोग रहने लगे। उसी मकान के एक भाग में उनके देश के विश्वम्भर घोष और यशोदानन्दनघोष प्रभृति रहते थे। देशस्थ लोगों के सहित एकत्र एक गृह में निवास करने से विशेष सुविधा होती थी। इसके कुछ दिन पीछे आश्विनमास में ईश्वरचन्द्र महाशय ने वीमारी के कारण देश को प्रस्थान किया। इस समय मधुसूदन तर्कालंकार संस्कृत कालेज के असिस्टेन्ट सेक्रेटरी और फ़ोर्ट विलियम कालेज के सरिस्तादार प्रधान पंडित के पद पर नियुक्त थे।

कार्तिक मास में तर्कालंकार की मृत्यु होने पर फ़ोर्ट विलियम कालेज के उस पद के प्राप्ति की अभिलाषा से अनेक लोग मार्शेल साहेब के निकट आवेदन पत्र भेजने लगे थे।

बहु बाजार के मंगला निवासी बा० कालीदास दत्त महाशय दूसरे एक पंडित को वह पद दिलाने के लिये मार्शेल साहब से अनुरोध करने गये। साहब ने कहा ईश्वरचन्द्र नाम का संस्कृत कालेज का एक छात्र है उसको यह पद देने का विचार किया है मैं जिस समय संस्कृत कालेज की अध्यक्षता के कार्य में नियुक्त था उस समय से अच्छी तरह से मैं उसे जानता हूं कि ईश्वर अत्यन्त बुद्धिमान और संस्कृत भाषा में विशेष योग्यता रखता है। साहेब के मुख यह सुनकर कालिदास बाबू ने कहा वे भी मेरे आत्मीय हैं उनके इस पद को पाने पर मैं परम प्रसन्न होऊंगा। यह कहकर कालीदास बाबू वहां से चले गये। उपरान्त मार्शेल साहिब ने जयनारायण तर्कपञ्चानन को बुलवाकर पूछा—तुम्हारे क्लास का छात्र ईश्वरचन्द्र कहां है? मैंने विचार किया है कि उसको फ़ोर्ट विलियम कालेज के प्रधान पंडित का पद दूं। किन्तु ईश्वर नितान्त बालक है गवर्नमेन्ट बालक देखने पर यह पद उस को दे, या नहीं, यही सन्देह है। यह सुनकर तर्कपञ्चानन महाशय ने कहा ईश्वर ने २२ वर्ष की अवस्था में संस्कृत कालेज की ला कमेटी की परीक्षा में पास होने के उपरान्त एक वर्ष वेदान्त शास्त्र की श्रेणी में अध्ययन किया है इसके पीछे दर्शन श्रेणी में प्रायः ४ वर्ष समस्त दर्शन शास्त्र का अध्ययन किया है। अतएव ईश्वर की अवस्था इस समय २७ वर्ष

की हुई है। अतएव मार्शल साहब का छोटी अवस्था वाला सन्देह जाता रहा—नहीं तो कम अवस्था में यह पद मिलना असम्भव था। साहेब जिस समय में संस्कृत कालेज के अध्यक्ष पद पर नियुक्त थे। उस समय से ही ईश्वरचन्द्र के प्रति उनका विशेष ध्यान था। इसलिये उन्होंने बहू बाज़ार मङ्गलानिवासी बाबू रामचन्द्रदत्त महाशय के द्वारा उनके निवास स्थान पर वह सम्वाद भेजा। उस समय ईश्वरचन्द्र देश में रहते थे। ठाकुरदास राजेन्द्र बाबू के मुंह यह सम्वाद पाते ही देश में जाकर ईश्वरचन्द्र को अपने साथ लेकर कलकत्ते चले आये। दूसरे दिन फोर्ट विलियम कालेज के प्रधान पंडित के पद प्राप्ति की अभिलाषा से मार्शल साहब के निकट आवेदन पत्र प्रेरित हुआ। एवं गवर्नमेंट ने, मार्शल साहेब की रिपोर्ट पर सम्मति दे दी।

(नौकरी)

अंग्रेज़ी सन् १८४१ ई० के दिसम्बर मास में ईश्वरचन्द्र मासिक ५०.रु० वेतन पर फोर्टविलियम कालेज के प्रधान पंडित के पद पर नियुक्त हो गये। सिविलियन लोग विलायत से कलकत्ते आकर (पहले) फोर्टविलियम कालेज में बंगला हिन्दी आदि सीख कर जब परीक्षा में पास हो जाते थे तब अन्य ज़िलों में इम्तिहान लेने को भेजे जाते थे। जो परीक्षा में

उत्तीर्ण नहीं हो सकते थे वे पुनः दूसरी वार परीक्षा देते थे। तीसरी वार पास नहोने पर उन को स्वदेश लौट जाना पड़ता था। सिविलियन लोगों की मासिक परीक्षा के कागज़ों का संशोधन ईश्वरचन्द्र ही को करना पड़ता था। अध्यक्ष मार्शेल साहब जिस समय संस्कृत कालेज के अध्यक्ष थे। उस समय में ईश्वरचन्द्र को असाधरण बुद्धि शक्ति सम्पन्न और व्याकरण काव्य और अलंकार शास्त्र में अद्वितीय पंडित जान कर अच्छी तरह से उनका परिचय पाया था इसीसे मार्शेल साहब ने मुग्धबोध व्याकरण रघुवंश, कुमार सम्भव, शकुन्तला, उत्तर चरित विक्रमोर्व्वशीआदि संस्कृत के कितने ही ग्रंथ ईश्वरचन्द्र से पढ़े थे। उस समय ईश्वरचन्द्र सामान्य अंग्रेज़ी जानते थे। इस कारण मार्शेल साहब ने कहा ईश्वरचन्द्र तुम को अच्छी तरह अंग्रेज़ी और हिंदी भाषा भी सीखनी होगी। क्योंकि प्रति मास तुम को सिविलियन विद्यार्थी छात्रों की परीक्षा के कागज़ देख कर दोष गुण की विवेचना करनी पड़ती है। यह सुन कर ईश्वरचन्द्र ने कई मास तक सवेरे सूर्य्योदय से ९ बजे तक एक हिंदुस्तानी पंडित को मासिक १०) वेतन दे कर हिन्दी भाषा सीखी। इस से हिन्दी परीक्षा के कार्य उन के द्वारा अच्छी तरह से होने लगा। उस समय में ताल तल्ला निवासी बा० दुर्गाचरण बन्द्योपाध्याय महाशय हेयर साहब के स्कूल के द्वितीय शिक्षक थे। वह हमेशा

सन्ध्या को २, ३ घंटे उन के घर पर आकर नाना विषयों में तर्क वितर्क और हित गर्भ बातचीत करते थे। उस समय दुर्गाचरण बा० के समान सुविज्ञ मनुष्य बिरला ही दिखाई देता था। वे ईश्वरचन्द्र के परम मित्र थे। प्रथमतः दुर्गाचरण बाबू ही स्वयं ईश्वरचन्द्र को अंग्रेज़ी भाषा सिखाने में प्रवृत हुये। कुछ दिन पीछे उन के छात्र बा० नीलमाधव मुखोपाध्याय के ऊपर अंग्रेज़ी पढ़ाने का भार उन्हों ने अर्पण कर दिया। नील-माधव बा० ने थोड़े दिन पढ़ाया। अनन्तर उस समय के हिंदू-कालेज के छात्र बा० राजनारायण गुप्त को मासिक १५) रु० वेतन दे कर ईश्वरचन्द्र महाशय नित्य प्रति प्रातःकाल से ८ बजे पर्य्यंत अंग्रेज़ी भाषा का अध्ययन करते थे। ऐसे कुछ दिन बीतने पर सिविलियन गणों की परीक्षा के कागज़ देखने में जैसी अंग्रेज़ी भाषा का जानना आवश्यक था वैसी शिक्षा हो गई। पिता उस काल तक सामान्य वेतन पर काम करते थे। ईश्वरचन्द्र ने अनेक प्रकार से विनय कर पिता को काम से छुड़ा कर देश में रहने का अनुरोध किया। परन्तु ठाकुर-दास ने नौकरी छोड़ कर पुत्र के अधीन रह गृहस्थी और दूसरे सन्तानों के लिखने पढ़ने का ख़र्च उस के माथे रखना उचित न समझा। उन्हों ने घर जाना स्वीकार न किया। तब अनेक वादानुवाद के पीछे ईश्वरचन्द्र के विशेष अनुरोध से राज़ी हो गये। नौकरी छोड़ने के समय उन के स्वामी ने

ठाकुरदास को उपदेश दिया कि वालक की वात मान कर पराधीन होना उचित नहीं है। जिस समय आप असमर्थ होंगे उस समय यदि वह वालक आपकी सहायता न करे तव क्या फिर नौकरी करने आप आओगे ? ठाकुरदास ने उन से कहा मेरा पुत्र साक्षात युधिष्ठिर के समान धर्म्म शील है वह मेरे को देवता के समान मान कर मेरी भक्ति व श्रद्धा करता है। उसकी वात मैं टालूंगा नहीं। यदि उसे अधार्मिक और दुश्चरित्र जानता तो कभी मैं कर्म्मत्याग न करता। उस दिन के उपरान्त से ही ईश्वरचन्द्र गृहस्थी के खर्च के निमित्त अपने पिता ठाकुरदास को प्रतिमास की पहली तारीख को २०) रु० भेज दिया करते थे शेष ३०) रु० में कष्ट से कलकत्ते वाले डेरा का खर्च चलाते थे। उस समय वहां पर वे तीन सहोदर दो चचेरे भाई दो फुफेरे भाई १ मोसेर भाई और पुराना नौकर श्रीराम यह नौ आदमी रहते थे।

गृह में रसोई वनाने वाला ब्राह्मण नहीं था सव को पारी से (वारी २ से) सव की रसोई वनानी पड़ती थी। ईश्वरचन्द्र भी अपनी वारी से सवकी रसोई वनाते थे। जिस गृह में निवास था उसमें सवको स्थान पूरा न पड़ने से वावू राजकृष्ण वन्द्योपाध्याय महाशय के पञ्चानन तल्ला में एक स्थान किराये लेकर रहने लगे।

ईश्वरचन्द्र व्याकरण पढ़ाने का ऐसा कौशल जानते थे कि

अनेक लोग एक वर्ष में ही व्याकरण समाप्त कर काव्य पढ़ने में समर्थ हो जाते थे। अनेक लोग सवेरे व सन्ध्या उनके गृह संस्कृत पढ़ने आते थे वे यद्यपि स्वयं अंग्रेज़ी का अभ्यासकरते थे किन्तु पढ़ने वाले के प्रति कदापि विरक्ति प्रकाश नहींकरते थे इस कारण सब लोग जानते थे कि हमी विद्यासागर के परम मित्र तथा आत्मीय हैं किन्तु वे आत्मीय व शत्रु सबसे समभाव प्रकाश करते थे। तत्व बोधिनी सभा के विख्यात लेखक बाबू अक्षय कुमारदत्त नित्य संध्या के उपरान्त सब प्रबन्धादि, उनको सुनाते थे और उनके परामर्श के अनुसार अनेक स्थलों को परिवर्तित परिवर्द्धित न कर देते थे। अक्षय बाबू ने अपनी रचित "बाह्यवस्तु के साथ मनोप्रकृति का सम्बन्ध विचार" नामक पुस्तक को अंगरेजी से बङ्गला में अनुवादित किया वह पुस्तक सबके आदर की हुई यह केवल विद्यासागर के संशोधित कर देने का ही फल था। उनकी रचित अन्यान्य पुस्तकों का संशोधन भी उन्होंने कर दिया था. ईश्वरचन्द्र महाशय ने सब से पहिले तत्वबोधिनी पत्रिका में "महाभारत" का बङ्गला अनुवाद प्रकाशित किया। तत्वबोधिनी सभागण के अनुरोध से वहीं के तत्वावध्यापक हुये थे किन्तु कुछ दिन पीछे किसी विशेष कारणसे तत्व बोधिनी का ससर्ग छोड़ दिया। उन्होंने राजकृष्ण बाबू को जो अल्प अवस्था से अंगरेजी पढ़ना छोड़ निरर्थक घर बैठे रहते थे छः मास में ही

मुग्ध बोध व्याकरण पढ़ा दिया। पंडित गिरीशचन्द्र विद्या-रत्न को उसी कालेज के एक पंडित के पद पर ४०) रु० मासिक पर कर दिया। कुछ दिन पीछे मदर्सा कालेज के एक पंडित के पद पर सहपाठी मुक्ताराम विद्या वागीश को ४०) रु० मासिक पर नियुक्त करवा दिया। उस समय लार्ड हार्डिञ्ज बहादुर, गवर्नर जेनरल होकर आये और उन्होंने देखा कि संस्कृत कालेज के छात्रों को अंगरेजी नहीं पढ़ाई जाती। इसलिये वङ्ग देश में १०० बङ्गला विद्यालय स्थापित किये। पंडितों की परीक्षा का भार मार्शल साहब को दिया गया।

वे बङ्गला अच्छी तरह न जानते थे इसलिये ईश्वरचन्द्र ही उनकी परीक्षा लेकर पंडित के पद पर नियुक्त कर देते थे। उस समय बङ्गला की और पुस्तक न होने के कारण "ज्ञान-प्रदीप", "हितोपदेश", "अन्नदा मंगल", आदि पुस्तकों की परीक्षा होती थी। लीलावती के अंक और भूगोल परीक्षा में जो पास हो उसीको नियुक्त किया जाना आवश्यक था। इसलिये उन्होंने अच्छे २ पंडितों को शिक्षक पदपर नियुक्त कर दिया। संस्कृत कालेज की व्याकरण की तृतीय श्रेणीके अध्यापक गङ्गा-धर तर्क वागीश महाशय अपने पुत्र गोविन्दचन्द्र शिरोमणि की अपेक्षा ईश्वरचन्द्र को अधिक चाहते थे। उनको जो कुछ कहना होता था तो वह ईश्वरचन्द्र से ही कहते थे। ईश्वर-चन्द्र सुनते ही तुरन्त उस कार्य्य को करते थे। १८४३ ई० के

ज्येष्ठ मास के अन्त में गङ्गाधर तर्क वागीश महाशय विषम विशूचिका रोग में बीमार हुये उनको दस्त और पेशाब बन्द हो जाने से बड़ा दुःख होने लगा। तब उन्होंने अपने प्रियछात्र ईश्वरचन्द्र को बुलाया ईश्वरचन्द्र उन्हें बीमार देख कर बड़े दुखी हुए और तुरन्त दौड़ कर एक अच्छे डाक्टर को लिवा लाये।

तीन दिन समस्त कामों को छोड़ के उन्होंने पीड़ित पंडितजी की चिकित्सा कराई। इससे उन्होंने प्रथम तो कुछ आरोग्य लाभ किया किन्तु पीछे हठात् एक दिन उनका प्राण निकलगया। कई दिन तक ईश्वरचन्द्र ने अपने हाथ से ही उनका मल मूत्रादि उठाया था।

चिकित्सकगण ने कई दिन की अपनी फीस का रुपया तक नहीं लिया था। उनकी औषधि में जो कुछ खर्च हुआ था वह ईश्वरचन्द्र ने स्वयं अपने पास से दिया था। बाल्यकाल के शिक्षक के प्रति उनकी ऐसी श्रद्धा और भक्ति देखकर संस्कृत कालेज के अध्यापक और छात्रगण उनकी यथेष्ट प्रशंसा करने लगे एवं सब ने एक वाक्य से कहा कि तर्क वागीश के पुत्र व कन्या इस समय पास नहीं है यद्यपि कितने ही छात्र हैं परन्तु कोई भी ईश्वर की तरह भक्तिपूर्वक उनकी सेवा शुश्रुषा न कर सका। अपना वा पराया किसी की भी पीड़ा कीखबर वह पाते थे तो तुरन्त वे डाक्टर दुर्गाचरण बाबू को लेकर

उस रोगी के घर जाते थे। यदि जानते कि इस रोगी का कोई कुटुम्बियों में नहीं है तो वे उसी वक्त अपने भाइयों को वा और नौकर लोगों को उस रोगी की शुश्रूषा के लिये भेजते थे। उनके आचरण से भी लोग कहते थे कि ईश्वर के समान दयालु और धर्म्मशाली मनुष्य त्रैलोक्य में नहीं होगा। इसके कुछ दिन पीछे दर्शन शास्त्राध्यापक जयनारायण तर्क पंचानन के नारिकेल डाङ्गा के मकान में उनके भानजे ईश्वरचन्द्र भट्टाचार्य्य को विशूचिका रोग हुआ। तर्क पंचानन महाशय ने डर से रोगी को गृह के बाहर निकाल दिया। चिकित्सा नहीं की गई रोगी को सड़क के पटरी पर सुला दिया था। ईश्वरचन्द्र महाशय यह सम्वाद पाकर डाक्टर बाबू दुर्गाचरण बन्ध्योपाध्याय को साथ ले उनके गृह जाकर चिकित्सा कराने में लग गये। उसी रात्रि को मध्यम सहोदर दीनबन्धु न्यायरत्न को बहूबाज़ार भेज तकिया तोषक, गद्दा, चद्दर, वगैरह मोल मंगवा लिया। रात्रि के समय मज़दूर न मिले तब स्वयं डेढ़ कोस तक उन चीजों को अपने शिर पर ले गये। अपने घर पर रोगी को उत्तम शय्या पर लिटा दिया गया एवं रोगी के शरीर की धूल को ईश्वरचन्द्र महाशय ने अपने हाथ से ही सफ़ा कर दिया था। इसके पीछे रोगी के सम्पूर्ण रूप से आरोग्यलाभ करने पर वे अपने घर पर गये। तर्क पञ्चानन का भानजा विषम रोग में हो गया किन्तु उन्होंने अपने लड़कों

को डर से रोगी के निकट नहीं जाने दिया। ईश्वरचन्द्र ने वहूवाज़ार से डाक्टर औषध और शय्या ले जाकर उसकी चिकित्सा कराई थी।

यह देख कर उन लोगों ने बड़ा आश्चर्य किया था इसके कुछ दिन पीछे संस्कृत कालेज के सर्व प्रधान छात्र प्रियनाथ भट्टाचार्य्य का मझला और छोटा भाई विशूचिका रोग में बीमार पड़े। ईश्वरचन्द्र ने यह सम्वाद पाते ही दुर्गाचरण बाबू आदि डाक्टर गणों को लेकर चिकित्सा कराई। उससे प्रियनाथ के मझले भाई दीनबन्धु ने आरोग्यलाभ किया किन्तु दुर्भाग्यवश उनके छोटे भाई की मृत्यु हो गई। उस समय वहूवाजार के निवास गृह के पास में मुख़ार वैद्यनाथ मुखोपाध्याय के एक नौकर को विशूचिका रोग हुआ। मुख़्तार बाबू ने नौकर को हाथ पकड़ कर ऊपर से निकाल दिया। ईश्वरचन्द्र ने उसे भूमि में पड़ा देख बड़ा दुःख प्रकाश किया उसे अपने घर में ले जाकर अपनी शय्या पर सुला दिया एवं तुरंत डाक्टर को लाकर चिकित्सा कराने लगे ५।७ दिन की चिकित्सा व शुश्रुषा से रोगी ने सम्पूर्ण रूप से आरोग्य लाभ किया। उस समय ईश्वरचन्द्र महाशय ने कितने ही अनाथ और पंडित लोगों की चिकित्सा कराने में बहुत रुपया खर्च किया था। उनकी ऐसी दया देख कर सब कहते थे यह मनुष्य नहीं है साक्षात् देवता है। इस प्रकार कितने रोगियों पर दया

की जो कि पुस्तक वढ़ जाने के भय से नहीं लिखा गया।

इसी समय संस्कृत कालेज की व्याकरण में प्रथम श्रेणी के पंडित हरनाथ तर्कभूषण मासिक ८०) व तृतीया श्रेणी के पंडित गङ्गाधर तर्क वागीश मासिक ५०) वेतन पर कर्म्म करते थे।

इन दोनों की मृत्यु के होने पर एजुकेशनल कौन्सिल के सेक्रेटरी डाक्टर मयेर साहव ने फोर्ट विलियम कालेज के अध्यक्ष मार्सेल साहव के निकट जाकर कहा कि उक्त कार्य के चलाने के लिये उपयुक्त दो पंडितों को स्थिर कर दीजिये। इस पर मार्सेल साहव ने ईश्वरचन्द्र को व्याकरण की प्रथम श्रेणी के कर्म्म में नियुक्त होने को एवं द्वितीय श्रेणी के निमित्त एक उत्तम योग्य पुरुष खोजने के लिये हुकुम दिया। यह सुन ईश्वरचन्द्र ने उत्तर दिया महाशय मैं रुपये का लालच नहीं करता आप के अनुग्रह रहने से ही मैं कृतार्थ हूं। और आप के पास रह कर मैं कितने ही नये २ उपदेशों को पाऊंगा। मैं दो उपयुक्त शिक्षक खोज करके आप को दूंगा यह कह कर तारानाथ-तर्क वाचस्पति का नाम बता दिया। साहव ने कहा तारानाथ इस समय कहां रहते हैं? ईश्वरचन्द्र ने कहा कि उन्होंने पहिले संस्कृत कालेज में पढ़ सर्वोत्तम प्रशंसा पत्र पाया था। वे कई वर्ष काशीधाम में रह कर पाणिनि व्याकरण और वेदान्त आदि का अध्ययन कर रहे हैं। सम्प्रति अम्बिका कालवा

में चतुष्पाठी पाठशाला स्थापन कर बहुत से छात्रों को पढ़ा रहे हैं। यह सुन साहब ने कहा। पहिले यह जानना आवश्यक है कि उन को नौकरी करने की इच्छा है या नहीं? उस दिन ईश्वरचन्द्र ने अपने घर आकर अपने मौसेरे भाई सर्वेश्वर बन्द्योपाध्याय को साथ ले हार खोला के घाट से गंगा पार हो पावँ पैदल कालना की यात्रा की। दूसरे दिन सायंकाल वहां उपस्थित होने पर वाचस्पति व उन के पिता अकस्मात उनको देखकर बड़े विस्मित हुए। अनन्तर वाचस्पति ने पूछा ऐसे वेशसे पैदल यहां तक आने का क्या कारण है? ईश्वरचन्द्र ने कहा आप ने कालेज अध्ययन कर जो प्रशंसा पत्र पाया है उसे मुझे प्रदान कीजिये मैं आप का सार्टीफ़िकेट फ़ोर्टविलियम कालेज के अध्यक्ष मार्शल साहब को दिखलाऊंगा। वे आपके लिये मासिक ९०) वेतन पर संस्कृत कालेज की व्याकरण की प्रथम श्रेणी के शिक्षकता कार्य के निमित्त गवर्मेंट को लिखेंगे। यह सुन कर वाचस्पति महाशय व उन के पिता बड़े खुशी हुए एवं प्रशंसा पत्रों को उनको सौंपा। प्रायः ३० कोस मार्ग पैदल चलने से सर्वेश्वर के दोनों पैरों में छाले पड़ गये थे अब चल न सकेंगे यह सोच नौका द्वारा कलकत्ते की यात्रा की। दूसरे दिन कलकत्ते पहुंच सब हाल कह कर वाचस्पति के सार्टीफ़िकेट और आवेदन पत्र साहब को दिये मार्शल साहब की रिपोर्ट पर गवर्मेन्ट ने वाचस्पति महाशय को

६०) रु० वेतन के पद पर नियुक्त किया एवं द्वितीय श्रेणी के व्याकरण के पंडित के पद और पुस्तकाध्यक्ष का कर्म्म खाली होने से सेक्रेटरी बाबू रसमयदत्त ने मफःस्वल की चतुष्पाठी के पंडित गण को वह कर्म्म देने की इच्छा की थी किन्तु मयेर के पूछने पर मार्सेल साहब ने अपने पंडित विद्यासागर ईश्वरचन्द्र महाशय के परामर्शानुसार मयेर साहब से कहा। मफ़स्वलस्थ पाठशालाओं के पंडितों के द्वारा कालेज के छात्रों का अध्ययन कार्यउत्तम रूप से न चलेगा। अतएव कालेज के ही परीक्षोत्तीर्ण पहिले छात्रों को वह कर्म्म देने से कार्य्य भली भांति चलेगा। तदनुसार सेक्रेटरी महाशय ने उन दो कामों पर नियुक्त करने के लिये व्याकरण विषय की द्वितीय श्रेणी की परीक्षा की व्यवस्था की सफ़ःस्वल के पंडित प्राणकृष्ण विद्यासागर आदि एवं संस्कृत कालेज के कई प्रसिद्ध छात्रों ने परीक्षा दी। परीक्षा में द्वारिकानाथ विद्याभूषण प्रथम और गिरीशचन्द्रविद्या रत्न द्वितीय हुये। तदनुसार विद्याभूषण को ५०) व विद्यारत्न को ३०) मासिक वेतन पर उक्त दोनों पदों पर नियुक्त किया गया। १८४२ ई० में रावर्टकौस्ट नामक एक सम्भ्रान्त वंशोद्भव सिविलियन फ़ोर्टविलियम कालेज में अध्ययन करते थे। ईश्वरचन्द्र महाशय उस समय उस कालेज के प्रधान पंडित के पद पर नियुक्त थे उन के साथ भेट होने पर वे मध्य २ में कालेज आकर विद्यासागर के साथ

नाना प्रकार के विषयों की आलोचना करते थे वे विलक्षण बुद्धिमान व विद्वान थे। वे ईश्वरचन्द्र से वार्तालाप से अतिशय प्रसन्न होते थे। एक दिन उन्होंने आग्रह पूर्वक सविशेष अनुरोध कर ईश्वरचन्द्र से कहा।

यदि तुम हमारे विषय में संस्कृत रचना कर दो तो मैं अत्यन्त प्रसन्न होऊंगा। उनके अनुरोध से क्षणकाल अपेक्षा करने को कह निम्न लिखित दो श्लोक बनाकर उनके हाथ में ला दिये। साहेब ने श्लोक लेकर प्रसन्न मन से उनकी बड़ी प्रशंसा की। श्लोक नीचे देखो—

" श्रीमान् रावर्ट काष्टोय विद्यालय मुपागतः ;
सौजन्य पूर्णो रलापैर्नितरां मामतोषयत् ।१।
सहि सद्गुण सम्पन्नः सदाचार रतः सदा;
प्रसन्न वदनानित्यं जीवत्वब्दशतं सुखी ।२। "

कास्ट साहब ने सन्तुष्ट होकर ईश्वरचन्द्र महाशय को २००) रुपया देने का विचार किया था। किन्तु उन्होंने न लेकर साहब को उपदेश दिया कि ये रुपये कालेज में जमा कर दीजिये संस्कृत कालेज का जो छात्र संस्कृत कविता की उत्तम परीक्षा दे वह ५०) पारितोषिक पावे। इसी व्यवस्था होने से प्रति वर्ष परीक्षा में एक छात्र कविता बनाने का पुरुष्कार ५०) रुपया पावेगा। संस्कृत कालेज के छात्रों ने ४ वर्ष तक काष्ट साहब का पुरष्कार पाया था।

कास्ट साहब उनको निर्लोभ और उदार हृदय देख कर अत्यन्त सन्तुष्ट हुये थे। कास्ट साहेब के पुरस्कार प्राप्ति की परीक्षा में उन्होंने प्रथम वर्ष यह प्रश्न दिया कि विद्या, बुद्धि सुशीलता, इन तीन गुणों का वर्णन करो इन तीनों गुणों में कौन प्रधान है? वह संस्कृत गद्यमें लिखो उस समय वह परीक्षा फोर्ट विलियम कालेज में होती थी। संस्कृत कालेज के सीनियर छात्र वर्ग में से वलि माधव भट्टाचार्य्य ने सर्व्वापेक्षा उत्तम कविता की थी सुतरां उन्होंने कास्ट साहब के ५०) रु० पुरस्कार प्राप्त हुये।

द्वितीय वर्ष संस्कृत पद्य लिखने का प्रश्न हुआ उस में दीनवन्धु न्यायरत्न और श्रीशचन्द्र विद्यारत्न ये दो जने सर्व्वापेक्षा उत्कृष्ट हुये। श्रीश की व्याकरण में भूल हुई थी। किन्तु दीनवन्धु की व्याकरण में भूल नहीं हुई।

दीनवन्धु सहोदर हैं इसलिये लोग कहि बुरा कहें इस डर से श्रीश को ही उस पारितोषिक के प्रदान करने को वाध्य हुये। उस समय रावर्ट कास्ट परीक्षोत्तीर्ण हो पंजाव प्रदेश में नियुक्त हुये, एवं अनेक दिन कर्म्म कर स्वदेश की यात्रा की। प्रस्थान के पहले एक दिन ईश्वरचन्द्र से मुलाकात कर उन्होने कहा मैं स्वदेश जाता हूं अब भारतवर्ष न आऊंगा तुम्हारे साथ मेरी यह अन्तिम मुलाकात है। बातचीत के उपरान्त उन्होंने कहा यदि पहिले की तरह तुम्हारा कविता

रचने का अभ्यास हो तो कल मेरे विपय में कुछ श्लोक वना कर भेजने से मैं वड़ा खुशी होऊंगा। तदनुसार ईश्वरचन्द्र महाशय ने कई कविता लिख कर उनके पास भेजी थी।

॥ श्लोक ॥

दोपैर्विनाकृतः सर्वैः सर्वैरासेवितो गुणैः।
कृती सर्व्वासु विद्यासु जीयात् कष्टो महामतिः॥ १॥
दया दाक्षिण्य माधूर्य्य गाम्भीर्य्य प्रमुखागुणा।
नय वर्त्मरते नूनं रमन्तेऽस्मिन् निरन्तरम्॥ २॥
सदा सदालाप रते नित्यं सत्पथ वर्त्तिनं।
सर्व्वलोक प्रियस्यास्य सम्पदस्तु सदास्थिरा॥ ३॥
अस्य प्रशान्त चित्तस्य सर्व्वत्र समदर्शिनः।
सर्वधर्म्म प्रवीणस्य कीर्त्तिरायुश्च वर्द्धताम्॥ ४॥
विद्या विवेक विनयादि गुणैरुदारैः॥
निश्शेप लोक परितोप करश्चिराय।
दूरं निरस्त खल दुर्व्वच नाव काष्टा।
श्रीमान सदाविजयतां न्तुरवर्ट कष्ट॥ ५॥

पूर्व प्रदर्शित रूप से संस्कृत रचना विपय में साहस और उत्साह उत्पन्न होने से ईश्वरचन्द्र महाशय समय समय में स्वतः प्रवृत्त हो किसी २ विपय में संस्कृत कविता करते थे।

विद्यासागर महाशय जानमियर नामक एक सिविलियन के प्रस्ताव के अनुसार पुराना सूर्य सिद्धान्त और यूरोपीय

मतानुयायी भूगोल व खगोल विषयक कई श्लोक बना कर १००) पारितोषिक प्राप्त किये थे। उस कविता के मुद्रित करने का अभिप्राय प्रकाशित किया था। इस के अतिरिक्त उन्हों ने बाल्यकाल में संस्कृत गद्य पद्य में देश भ्रमण, संतोष, क्रोध, प्रभृति, नाना प्रकार के विषयों की रचना की थी। वे सब कागज़ उन के भाई शम्भुचन्द्र के पास थे। वे जिस समय में बालक बालिका विद्यालय खोलने के लिये देश में जाकर उनके आदेशानुसार कार्य्य करते थे उस समय में उन्हों ने सब कागज़ पत्र मध्यम भ्राता के पास रक्खे थे। उन्हों ने उन पत्रों को यदुनाथ मुखोपाध्याय अपने बहनोई के दिये यदुनाथ उस समय संस्कृत कालेज में पढ़ते थे। वह सब लिखना देखकर कालेज के अनेक छात्रों ने संस्कृत रचना सीखी थी। दीनबन्धु और यदुनाथ काल के कवर हो गये हैं।

इसलिये उक्त रचना के सब कागज़ नहीं मिले। जो उप-स्थित थे वे ही १२९६ साल की पहिली दिसम्बर को प्रकाशित किये गये हैं। फोर्ट विलियम कालेज में कर्म करने के समय सीटिनकार, काष्ट, च्यापमैन, सिसिल बीडन, ग्रे, ग्राण्ड हेलिडे, लार्ड ब्राउन, हडेन आदि बहुत सम्भ्रान्त सिविलयनों के साथ ईश्वरचन्द्र की विशेष रूप से गाढ़ी मैत्री हो गयी थी सिविलियन लोग उनको विशेष सम्मान करते थे और चाहते थे।

किसी २ सिविलियन को परीक्षा में पास न होने पर स्वदेश लौट जाना पड़ता था। इस कारण मार्शल साहब दया करके उन सिविलियनों के परीक्षा कागज़ों में नम्बर बढ़ा देने केलिये कहते थे। परन्तु अध्यक्ष की बात न सुन कर वे न्यायानुसार कार्य्य करते थे, बहुत कहने पर वह क्रोध से कहते किअन्याय देखने पर मैं कार्य्य को परित्याग कर दूंगा। इस कारण सिवि-लियन छात्रगण और अध्यक्ष मार्शल साहब उनका आन्तरिक अभिप्राय समझ कर भक्ति करते थे। इस वर्ष मध्यम सहोदर दीनबन्धु संस्कृत कालेज की परीक्षा में सीनियर डिपार्टमेन्ट में सब से प्रधान हुये। वे ईश्वरचन्द्र के तुल्य बुद्धिमान थे। इसके पहिले उल्लेख हो चुका है कि उन्होंने ईश्वरचन्द्र से छः मास में व्याकरण सीखा था। इस समय उन्होंने रघुवंश, कुमारसम्भव, माघ, भारवी, मेघदूत, शकुन्तला, उत्तर चरित्र, आदि साहित्य ग्रन्थ अध्ययन कर अलङ्कार साहित्य दर्पण, काव्य प्रकाश का अध्ययन किया इसके पीछे प्राचीन स्मृति, मनु और मिताक्षरा पढ़ा। संस्कृत कालेज के सीनियर डिपार्ट-मेंट के छात्रगणों के साथ परीक्षा देकर सेकण्ड ग्रेड का स्कालर्शिप पद प्राप्त किया है। फिर परीक्षा में उत्तीर्ण हो दो वर्ष तक फर्स्टग्रेड के २०) रुपये स्कालर्शिप पाते रहे। ये अतिशय ज्ञानशक्ति सम्पन्न थे। वह सब काम छोड़ कर निरन्तर अध्ययन करते थे। सुतरां इस प्रकार

अत्यल्प काल में इतना अधिक अध्ययन कर लाभ उठाया है। इस सम्वाद के सुनने पर संस्कृत कालेज के शिक्षक लोग और अन्यान्य सभी विस्मय करते थे यह था कि जो साहित्य के पण्डित थे वे स्मृति वा अलङ्कार पढ़ाने में असमर्थ थे। जो जिस विषय के पण्डित थे वे उसीको पढ़ा सकते थे। दूसरे विषय में बिलकुल अनजान थे। ईश्वरचन्द्र सब विषय पढ़ा सकते थे।

अनेक लोग राजकृष्णको देखने के लिये ईश्वरचन्द्र के गृह आया करते थे। उस समय के शिक्षकगण राजकृष्ण की इस अवस्था में योग्यता देख कर मुग्ध होते थे। संस्कृत कालेजमें नियत था कि ३ वर्ष व्याकरण एवं उसके पीछे दो वर्ष साहित्य पढ़ना पड़ता था अनन्तर एक वर्ष अलङ्कार श्रेणीमें पढ़ विशेष ज्ञान उत्पन्न होने पर छात्रगण दर्शन वा स्मृति श्रेणी में अध्ययन करते थे। पीछे टेस्ट, एग्जामिनेशन में उत्तीर्ण होने पर सीनियर डिपार्टमेंट की परीक्षा देते थे। ईश्वरचन्द्र के अढ़ाई वर्ष ही पढ़ाने पर रामकृष्ण का सीनियर परीक्षा देने के लिये चारों ओर उनका धन्यवाद होने लगा। किस प्रणाली के अवलम्बन से शिक्षा दी गई है यह जानने के लिये अनेक लोग ईश्वरचन्द्र के गृह उपस्थित होते थे। संस्कृत कालेज के असिस्टेण्ट सेक्रेटरी राममाणिक्य विद्यालङ्कार महाशय के परलोक हो जाने के पीछे मार्शल साहब वह पद ईश्वरचन्द्र

को देना चाहते थे। किन्तु उनकी सम्मति व अनुरोध से उस पद पर मध्यम सहोदर दीनवन्धु को नियुक्त किया। इस समय वे दूध से बना हुआ खाद्य द्रव्यादि भोजन नहीं करते थे। इसका कारण यह था कि गाय दुहने के समय बच्छा बंधा रहने के कारण दूध पीने के लिये छटपट करता है किन्तु मनुष्य ऐसा नृशंस और स्वार्थपर है कि उसको मातृ दुग्ध पान नहीं करने देता। ऐसे गाय दुहने के समय यह दशा देख कर उनको अत्यन्त मानसिक कष्ट होता था। कभी २ चक्षुओं के जल से वक्षस्थल डुबा देते थे। प्रायः ५ वर्ष तक वे दुग्ध व घृत द्वारा प्रस्तुत मिष्ठान्नादि का भोजन नहीं करते थे एवं सब परित्याग कर निरामिष भोजन करते थे। कुछ समय तक इस नियम से दिन बिताते रहे पीछे जननी देवी के अनुरोध से दूध खाने को बाध्य हुये किन्तु तब से दुग्ध उन्हें पचता नहीं था अर्थात् दुग्ध पान करने से बमन होता था।

सन् १८४६ ई० के अप्रैल मास में वे मासिक ५०) वेतन पर संस्कृत कालेज के असिस्टेण्ट सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त हुये। अनन्तर उन्होंने व्याकरण की प्रथम द्वितीय व तृतीय श्रेणी के अध्ययन की नूतन प्रणाली प्रचलित की। तदनुसार अध्यापकगण छात्रों को शिक्षा देने में प्रस्तुत हुए। विद्यालय के कोई २ शिक्षक चेयर पर बैठ कर सोते थे, कोई छात्र पंखा लेकर अध्यापक को हवा करता था उन्होंने यह देख कर इस

बात की मनादी करदी। ऐसा नियम कर दिया कि साढ़ेदश बजे के मध्य में ही अध्यापक व छात्रगण को विद्यालय में उपस्थित होना पड़ेगा इसके पीछे सेक्रेटरी की विना अनुमति के शिक्षक या छात्र कोई इच्छानुसार विद्यालय से बाहर न जा सकेगा। विद्यार्थी इच्छानुसार ही सब क्लासों से बाहर माली के घर जल पीने न जा सकेंगे। एक एक करके जाँय उन को काठ के पास लेकर जाना होगा। अध्यापक और विद्यार्थी लोग विना आवेदन पत्र दिये अनुपस्थित न हो सकेंगे। इस प्रकार के व शिक्षा और अध्ययन सम्बन्धी अनेकानेक संबन्ध से शिक्षक व विद्यार्थीगण को बहुत सन्तोष देते थे।

वे एक समय संस्कृत कालेज के विशेष कार्य्योपलक्ष में हिन्दू कालेज के प्रिंसिपल कारसाहब के निकट गये। साहब टेबिल के ऊपर जूता पहिरे हुए दोनों पैर रखे थे। इन्हें देख कर वे उठे नहीं और उनके साथ वैसे ही पैर रखे बात चीत करते रहे। उनके इस असौजन्य व्यौहार से वे मन ही मन बहुत असन्तुष्ट हुये। कुछ दिन पीछे वे ही कारसाहेब हिन्दू कालेज के किसी कार्य्य के अनुरोध से संस्कृत कालेज में उनसे मुलाक़ात करने आये। कार साहेब ने इसके पहिले जैसी शिष्टाचार पद्धति दिखला कर प्रीति किया था ईश्वरचन्द्र आज तक उसी तरह उनसे मिलते थे। परन्तु आज साहब देखने आये हैं यह सुन, उन्होंने तुरन्त अपना

जूता पहिर कर उनकी तरह दोनों पैर टेबिल के ऊपर रख कर साहब को बैठने के लिये किसी प्रकार का सम्भाषण वा अभ्यर्थना नहीं की। साहब खड़े होकर उनके साथ बातें करने लगे। कियत्क्षण पीछे साहब ने लज्जित व अपमानित होकर प्रस्थान किया। पीछे शिक्षासमाज के सेक्रेटरी मयेर साहब से इस कर्त्तव्य की रिपोर्ट की। कि हिन्दू कालेज के किसी कार्य के अनुरोध से संस्कृत कालेज के असिस्टेन्ट सेक्रेटरी के पास मैं गया था। उन्होंने हमसे जैसा व्यवहार किया है उससे हमारा विशेष अपमान हुआ है। अन्य कोई यूरोपियन ऐसा अपमान कभी सहन न करता। शिक्षा समाज ने ईश्वरचन्द्र से कैफ़ियत तलब की। उनने भी उसका उत्तर लिखा कि इससे पहिले उन्हीं साहब ने हमसे वैसा असौजन्य व्यवहार किया है अर्थात् हमसे बैठने को न कहकर टेबिल के ऊपर जूता पहिरे रखे हुए थे, और उसी तरह हमारे साथ बातचीत की थी। इसपर शिक्षा समाज के सेक्रेटरी ने परम संतोष पाया और हँसते हुए कहा कि बङ्गाल में पंडित विद्यासागर के समान तेजस्वी कोई और हमारी दृष्टि गोचर नहीं होता। इस कारण से ही हम सब बंगालियों की अपेक्षा ईश्वरचन्द्र से आन्तरिक श्रद्धा और भक्ति करते हैं बङ्गाल में विद्यासागर के सदृश और दूसरे लोग नहीं हैं मयेर साहब जब तक शिक्षा समाज के अध्यक्ष रहे तब तक

विद्यासागर के साथ परामर्श बिना किये कोई कार्य नहीं करते थे।

ई० १८४६ साल में पूज्यपाद जयगोपाल तर्कालङ्कार महाशय की मृत्यु होने पर संस्कृत कालेज में साहित्य शास्त्र के अध्यापक का पद शून्य हुआ। संस्कृत कालेज के सेक्रेटरी बाबू रसमयदत्त महाशय ने स्थिर किया था कि ईश्वरचन्द्र को उस पदपर नियुक्त करूंगा। किन्तु किसी विशेष कारणवशः वे असम्मत हुए व यत्नपूर्वक मदनमोहन तर्कालङ्कार को उक्त पदपर नियुक्त करा दिया। जयगोपाल तर्कालङ्कार की मृत्यु के उपरान्त ही सर्वानन्द न्यायवागीश साहित्य श्रेणी के प्रतिनिधि स्वरूप हो कार्य करते थे। न्याय वागीश महाशय पहिले की तरह, नित्य विद्यालय में आकर चेयरपर बैठकर सोते थे। हर समय नस्य लेते थे। तथापि निद्रा उनको परित्याग नहीं करती थी। वे छात्र गण को पढ़ने के समय केवल मल्लिनाथ का टीका सुना दिया करते थे। कविता का भाव तथा अन्वय वा अर्थ कुछ नहीं बतलाते थे। इसलिये छात्रगण का संतोष नहीं होता था। विद्यार्थियों ने यह विचारा कि उनके शिक्षक रहने से आगामि वर्ष की परीक्षा में कृत कार्य्य होने कीआशा नहीं है। इसलिये असिस्टेंट सेक्रेटरी को समस्त विवरण उन लोगों ने कहा और मयेर साहिब से प्रार्थना की कि शीघ्र ही उपयुक्त शिक्षक के न होने से हमारे पाठ की अनेक क्षतिहोती

है। अनन्तर विद्यासागर के कौशल से मदनमोहन तर्कालंकार ने उस पद पर नियुक्त होने का आदेश पाया है यह सुन कर न्याय वागीश महाशय ने प्रस्थान किया।

उस समय वङ्गला भाषा में कोई उत्तम पुस्तक न थी। ज्ञानप्रदीप, प्रबोधचन्द्रोदय, पुरुष-परीक्षा, और हितोपदेश आदि जो तीन चार पुस्तकें थीं उनसे कोई लाभ न होता था। मार्शल साहब के कहने पर उन्होंने हिन्दी वैताल पच्चीसी से प्रारम्भ कर उत्तम २ पुस्तकादि का आरम्भ कर दिया। उनके सुप्रबन्ध से समस्त उच्चाधिकारियों ने परम सन्तोष लाभ किया अन्यान्य वर्ष की अपेक्षा परीक्षा का फल अनेकाँश उत्कृष्ट होने लगा। उस वर्ष फाल्गुण मास में पारितोषिक वितरण कार्य्य समाप्त होने पर उन्होंने छोटे भाइयों को कलकत्ते छोड़ निज गृह को गमन किया कुछ दिवस उपरान्त द्वादश वर्षीय हरचन्द नामक चतुर्थ भाई विशुचिका रोगाक्रांत हो अकाल में ही परलोक चला गया। अनुगत असाधारण वुद्धि शक्ति सम्पन्न भ्राता के मृत्यु सम्वाद से वे अत्यन्त शोकातुर हुये।

लिखने पढ़ने की चर्चा एक वारही छोड़ दी। रात्रि कई मासतक रोदन में ही विताते थे। पाँच छः मास समय पर आहार न करने से अतिशय दुर्व्वल हो गये थे। भ्रातृवर्ग में हरचन्द अत्यन्त वुद्धिमान था। उसके ऊपर उन

की ऐसी आशा थी कि मैं परिवार प्रतिपालन के लिये नौकरी करने में प्रवृत्त हुआ हूं। इच्छा के अनुसार भली भाँति लिखना पढ़ना न सीख सका जो जानता हूं उससे देश का कोई उपकार न होगा।

हरचन्द्र को मन के अनुसार लिखना पढ़ना सिखा दूंगा। उनके द्वारा देशस्थ लोगों का उपकार होगा। जननी देवी पुत्र शोक में आहार—निद्रा परित्यागपूर्वक निरन्तर रोदन करती रहती रहीं, इस कारण उनके समझाने के हेतु अन्यान्य भाइयों को कलकत्ते से देश भेज दिया। मध्यम भाई दीनबन्धु न्यायरत्न अपने कार्य्य पर छः मास प्रतिनिधि रख अन्यान्य भाइयों के साथ देश में रहने लगे कुछ दिन पीछे जननी देवी के शोक के दुःख कम होने पर उन्होंने सबको पुनर्व्वार कलकत्ता जाने की आज्ञा दी। उस समय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने संस्कृत (कालेज) के किसी प्रबन्ध उपलक्ष में बात ठीक न रखने के कारण हठात् कर्म्म छोड़दिया। रिज़ाइन पत्र (इस्तेफ़ा) पाकर कालेज के अध्यक्ष बाबू रसमय दत्त और शिक्षा समाज के सेक्रेटरी डाक्टर मयेर साहब ने उनको अनेक प्रकार के उपदेश देकर काम छोड़ने से रोका एवं अन्यान्य आत्मीय बन्धु बान्धव ने भी विशिष्टरूप से हित गर्भ उपदेश दिये किन्तु किसी की बात न सुनी। इस कारण उस समय अनेक आत्मीयों ने कहा विद्यासागर! अब तुम

क्या करके जीवन व्यतीत करोगे ? यह सुन उनको उत्तर दिया। आलू पर वर बेचेंगे या बनियों की दूकान कर जीवका निर्वाह करेंगे। ऐसे सम्मान का कार्य्य विना कारण परित्याग करने से अनेक लोग आश्चर्य करते थे। किसी किसी ने कहा विद्यासागर का दिमाग बिगड़ गया है नहीं तो ऐसे सम्मान का पद क्यों छोड़ा ? किन्तु काम छोड़ने से उनको कुछ भी मानसिक कष्ट न हुआ। उस समय निवासगृह के निरुपाय आत्मीय और सम्पर्कीय प्रायः वे २० बालकों को अन्न वस्त्र देकर पढ़ाते थे। उनमें से किसी से भी गृह छोड़ने की बात एक दिन भी न कही। कैसे पराया उपकार होवे। इसी सोच में मग्न रहते थे। भली भांति अंगरेजी भाषा सीखने के लिये नित्यप्रति प्रातःकाल बहू बाज़ार के पञ्चानन तल्ला के निवास स्थान से शोभा बाज़ार के राजा राधाकान्त देव के घर जाते थे। राजा के दामाद बाबू अमृतलाल मिश्र व दूसरे बाबू श्रीनाथचन्द्र बाबू के पास बैठते थे। इस प्रकार अत्यन्त आग्रह से अंगरेजी भाषा पढ़ते थे। मध्यम सहोदर फोर्टविलियम कालेज के प्रधान पद पर नियुक्त हो कर मासिक ५०) रु० वेतन पाते थे उसी के द्वारा कलकत्ते के निवासगृह का खर्च अति कष्ट से निर्वाह होने लगा। ईश्वरचन्द्र देशस्थगृह के मासिक व्यय निर्व्वाह के लिये प्रति मास ५०) रु० ऋण लेकर भेजने लगे।

सम्वत १६०३ में हिन्दी वैताल पच्चीसी का वङ्गला अनुवाद प्रकाशित किया। फोर्ट विलियम कालेज के कर्म्माध्यक्ष ने सिविलियनों के पाठ के उद्देश से १०० वैताल पचीसी वहाँ की लाइब्रेरी में रखीं गवर्मेमेंट ने उसका मूल्य ३००) रु० दिया। इसके द्वारा छपाने के व्यय का निर्वाह हुआ। अब बची हुई ४००) पुस्तकों में से प्रायः २०० पुस्तकें आत्मीय और वन्धु वान्धवों को विना मूल्य वाँट दी वैताल पचीसी मुद्रित होने के पहिले और कोई कभी ऐसी उत्कृष्ट पुस्तक वङ्ग भाषा में न लिख सका। इसलिये देश विदेश में उनकी प्रशंसा होने लगी। वैताल पचीसी लिखने से वङ्गाल देश में उनका अद्वितीय नाम प्रकाशित हुआ। उस पुस्तक में अति मधुर पद लिखे गये थे। उस समय सम्प्रदाय के लोगों को उक्त पुस्तक के पढ़ने की आन्तरिक इच्छा होती थी उस पुस्तक की वङ्गला पढ़ तत्काल संस्कृत कालेज के और अन्यान्य विद्यालय के वालक वृन्द वङ्गला लिखना सीखते थे। वे वङ्ग भाषा के आदि पथ प्रदर्शक थे यह सब को मुक्तकण्ठ से स्वीकार करना होगा। वे ही प्रचलित वङ्ग भाषा का लिखना व पढ़ना दोनों ही के गुरु स्वरूप हैं।

इसके कुछ दिन पीछे सिराजुद्दौला के सिंहासन पर आरोहण से अंगरेज़ों के राज्य अधिकार पर्य्यन्त मार्शल साहेब की हिस्ट्री आफ़ वेङ्गाल अर्थात वङ्गाल का इतिहास

देशी भाषा में अनुवाद कर मुद्रित किया उस समय वंगाल का इतिहास सब ने आदर पूर्वक ग्रहण किया था। स्वल्प दिनों में ही सब पुस्तकें बिक गईं।

इसके कई मास पीछे अर्थात् सन् १२५६ साल की २६वीं तारीख को जीवन चरित्र नामक पुस्तक मुद्रित व प्रचारित की, रावर्ट विलियम चैम्बर्स, ने बहुसंख्यक सुप्रसिद्ध महानुभाव-गण;का वृतान्त संकलितकर अंगरेजी भाषामें जो जीवन चरित्र पुस्तकें प्रचार की थीं उनमें से केवल कोपर्निकस, गेलिलीयो निउटन और हार्सेल आदि कई महानुभावों के चरित अङ्गरेजी भाषा से बङ्गला भाषा में अनुवाद कर यह पुस्तकें प्रकाशित की थीं। इससे पहिले जीवन चरित लिखने की प्रथा प्रचलित नहीं हुई थी। यूरोपियनों की भाँति जीवन चरित लिखने की प्रथा प्रचलित रहने से इस देश के भी अनेक महानुभावों का नाम प्रकाशित होता। दुर्भाग्य प्रयुक्त ऐसी प्रथा प्रचलित न रहने के कारण भारतवर्ष के पूर्वतन असंख्य महानुभाव महोपाध्यायों का नाम कालक्रम से विलुप्त हो गया है बङ्ग देश के विद्यार्थी बालक वृन्दों का विशिष्ट रूप से उपकार हो सके इस आशा से वे इस पुस्तक के अनुवाद में प्रवृत हुये थे। सामान्य कृशक के पुत्र न्यूटन। अपने यत्न और परिश्रम से लिखना पढ़ना सीख कर जगद्विख्यात हुये थे। न्यूटन अद्वितीय बुद्धिमान और वैज्ञानी होकर भी

स्वभावतः विनीत थे। वे अपनी विद्या का किंचित्मात्र भी अभिमान नहीं करते थे। न्यूटन की यह सुप्रसिद्ध बात धरा-तल में जागृत है, मैं बालकों की नाईं समुद्रतट से कङ्करों का संकलन करता हूं जब कि ज्ञान का समुद्र मेरे सामने भरा हुआ इत्यादि विद्या शिक्षा के अनेक जीवन चरित के पाठ से एत-देशीय लोग नाना प्रकार के आदेश में प्राप्त होंगे। एवं उसी के साथ २ उस देश की ततकालीन रीति, नीति, इतिहास, आचार व्यवहार जानेंगे।

जीवन चरित्र पुस्तक मुद्रित करने के स्वल्प दिनों में ही लोगों के आग्रह और खरीदने से समस्त पुस्तकें बिक गई। उस समय के विद्यार्थी लोग ही इस पुस्तक को समादर पूर्वक पाठ करते थे। उनका सुन्दर अनुवाद और ललित रचना प्रणाली देखकर सभी को असीम आनन्द प्राप्त हुआ था सुतरां वे सर्वसाधारण के निकट अद्वितीय लेखक कहलाकर प्रशंसा के पात्र हुये थे। इससे पहिले सरल भाषा में अंगरेज़ी पुस्तक का ऐसा अनुवाद करने में कोई समर्थ नही हुआ था। कप्तान बैङ्क साहब ने संस्कृत बंगला और हिन्दी सीखने के विचार से शिक्षा समाज के अध्यक्ष डाक्तर मयेर साहब से यह अनुरोध किया कि अंगरेज़ी और संस्कृत भाषामें विलक्षण अभिज्ञ एक पंडित का निर्वाचन कर दीजिये। संस्कृत कालेज के सेक्रेटरी का कार्य छोड़ निरर्थक बैठे हैं। ऐसा विचार कर मयेर साहब

ने कप्तान बैङ्क को शिक्षा देने के लिए उनसे अनुरोध किया। वे मयेर साहब के अनुरोध परतन्त्र हो बैङ्क साहब को कई मास नित्य शिक्षा देने को जाते थे। साहब ने स्वल्प दिनों में ही बङ्गला और हिन्दी भाषा भली भाँति सीख ली। कई मास पीछे बैंक साहिब मासिक ५०) रु० के हिसाब से इकट्ठे रुपये उनको देने को तैयार हुये उन्होंने वे रुपये ग्रहण नहीं किये। साहेब ने रुपये न लेने का कारण पूंछा उन्होंने कहा आपने कहा है कि मैं मयेर साहब का परम मित्र हूं। मैं भी उनका मित्र हूं ऐसी जगह मैं किस तरह आपसे वेतन ले सकता हूं। नौकरी न रहने से क्रमशः ऋण अधिक होता जाता था; तथापि साहब के बहुत कहने पर भी परिश्रम के रुपये ग्रहण न किये। अन्य कोई ऐसी अवस्था में कदाचित उपस्थित रुपये न छोड़ सकता। बाल्यकाल से ही उनकी अर्थ के प्रति दृष्टि कम थी। और उदार वृत्ति थी।

इस समय उन्होंने मदनमोहन तर्कालङ्कार से परामर्श कर संस्कृत ग्रन्थ के नाम से एक प्रेस स्थापित किया उसमें साहित्य न्यायदर्शन इत्यादि ग्रन्थ क्रमशः मुद्रित करने लगे। उसके लाभ से क्रमशः छापेखाने की स्टेट का कलेवर वृद्धि करने लगे। अनन्तर फोर्टविलियम कालेज के हेडराइटर के पदपर वे ८०) वेतन पर नियुक्त हुए। वे पहिले की भांति इस समय भी सपरिश्रम अंगरेज़ी पढ़ते थे। वे किसी की सहायता

के बिना स्वयं रिपोर्ट लिखकर गवर्नमेंट के यहां भेजते थे। उनकी रचना अति उत्कृष्ट होती थी एवं हस्ताक्षर भी तदनुरूप अति उत्तम हो गया था। उसी वर्ष उन्होंने परीक्षक का काम कर गवर्नमेंट से पुरुस्कार पाया पुरुस्कार के रुपयों से सर्वापेक्षा प्रथम परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थी को समग्र संस्कृत महाभारत पुस्तक क्रय कर दी। शेष रुपयों से दरिद्र लोगों को वस्त्र ले दिये। उस समय तक किसी परीक्षक ने छात्र को को निजी पारितोषिक नहीं दिया था। विद्यासागर महाशय को इस विषय में प्रथम मार्ग प्रदर्शक कहना चाहिये। कुछ दिन पीछे रामकमल भट्टाचार्य कठिन रोगाक्रान्त हो कष्ट पाते हैं यह सुन वे बाबू दुर्गाचरण बन्द्योपाध्याय महाशय को साथ ले उनके गृह जा विशेष रूप से चिकित्सा कराने लगे प्रतिदिन बहू बाजार के निवास गृह से सिमूलिया जाने में किञ्चित्मात्र आलस्य नहीं करते थे। उनके अनुरोध से डाक्टर महाशय ने विज़िट (फ़ीस) नहीं ली।

सन् १८५६ साल की ३०वीं कार्तिक की रात्रि के समय विद्यासागर की स्त्री ने एक सन्तान को प्रसव किया। उसका नाम नारायण रखा गया। इसके कई दिन पीछे अष्टमवर्षीय पञ्चम सहोदर हरिश्चन्द्र पढ़ने के लिये कलकत्ते गये थे। वहां रहने के कई दिन पीछे वह विषम विशूचिका रोगाक्रान्त हो अकाल में ही कालग्रास में निपतित हुआ। उसके मरने का

ईश्वरचन्द्र को अत्यन्त ही दुःख हुआ।

अतएव वे कई मास तक शोक में पड़े रहे थे। यहां तक कि समय से भोजन नहीं करते थे। लिखने पढ़ने से विरत हो गये थे। वे कहते थे हम सात भाई हैं यद्यपि सब जीवित रहे तो देश के अनेक उपकार कर सकेंगे। उन्होंने मन में संकल्प किया था स्वयं उपार्जन कर संसार मात्र का निर्वाह करेंगे। अन्यान्य भ्रातृवर्ग को देश में रख विद्यालय स्थापन पूर्वक देश के दरिद्र लोगों की सन्तानगणों को लिखना पढ़ना सिखावेंगे। किन्तु उपर्य्युपरि २ वर्ष में २ भाइयों की मृत्यु से वे हताश हो गये थे। हरिश्चन्द्र ने इससे पहिले कहा था कि दादा मेरे विवाह में बाजे बजवाने होंगे। इसलिये यद्यपि वे दूसरों के विवाह में बाजे का शब्द सुन सुन दीर्घ निश्वास परित्याग पूर्वक अश्रुविसर्ज्जन करते थे। सुना कि माता दोनों पुत्र की मृत्यु से सर्वदा रोती रहती हैं। इसलिये वे जननी को देश से कलकत्ते ले आये एवं उन्हें निकट रख सान्त्वना देते रहे। उनको अन्य मनस्ककर रखने के हेतु वे सर्वदा आत्मीय बान्धवादिकों को निमंत्रण देकर खिलाते थे। इस कारण जननी उनकी बात चीत से एवं रसोई बनाने से समय व्यतीत कर निज कमी होने पर वैशाख मास में भाइयों के साथ देश चली गईं।

देश में रह "रूडीमेन्टस आफ़ नालेज नामक" पुस्तक का

बङ्ग भाषा में अनुवादकर १२५७ साल में बोधोदय नामक एक पुस्तक मुद्रित व प्रकाशित की। निम्न श्रेणीस्थ बालागण को बालोपयोगी पुस्तक आजतक कोई नहीं प्रकाश कर सका। छोटे ही काल से मनही मन सोचते थे कि स्त्रियां क्यों नहीं लिख पढ़ सकतीं क्यों वे सदा अपने कर्तव्य में असमर्थ रहती हैं कुलीनों का बहुविवाह किस, उपाय से बंगाल देश निवासी हिन्दू गणों का मङ्गल नहीं है।

विधवा बालिका देखकर वो आन्तरिक दुःखानुभाव करते थे। एक दिन किसी आत्मीय की द्वादश वर्षीया दुहिता के विधवा होने पर उसको देख जननी देवी उसे शोक में विह्वल होकर रोने लगी। अपनी जननी और जनक को समझाया तब जननी और पितृ देव ने कहा कि विधवा बालिका के पुनर्वार विवाह की विधि क्या धर्मशास्त्र के किसी स्थल में कुछ भी नहीं लिखी है? क्या शास्त्रकार इतने (ऐसे) निर्दयी थे? जनक जननी के मुख से निकला हुआ यह वाक्य उनके हृदय में प्रवेश हो रहा था। हिन्दू कालेज के सीनियर डिपार्टमेंट के छात्रगण ने मिलकर "सर्व-शुभकरी" नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित की। उक्त सम्वादपत्र के अध्यक्ष बाबू राजकृष्ण मित्र ने अनुरोध करके ईश्वरचन्द्र से कहा कि हमारी इस नवीन पत्रिका में प्रथम क्या लिखना उचित है वह आप स्वयं लिख दें। प्रथम कागज में आपकी रचना प्रकाशित होने से कागज का

गौरव होगा एवं सब आदर पूर्वक कागज़ देखेंगे। उनके लिखित होने के कारण उस समय के विद्वान लोग आदर पूर्वक सर्वशुभकरी मासिक पत्रिका का पाठ करते थे।

इस वर्ष वे शिक्षा-समाज की ओर से हिन्दू कालेज हुगली कालेज कृष्णनगर कालेज और ढाका कालेज के सीनियर डिपार्टमेंट के छात्रगण की बङ्गला रचना के परीक्षक नियुक्त हुये। भारतवर्ष में स्त्रियों को लिखने पढ़ने की शिक्षा देना उचित है या नहीं? इस विषय में उन्होंने तीन प्रश्न दिये! संस्कृत कालेज के साहित्य अध्यापक मदनमोहन तर्कालङ्कार संस्कृत कालेज छोड़ मुरशिदावाद के पंडित के पदपर नियुक्त हुये। उसी समय काव्यशास्त्र शिक्षक का पद शून्य हो गया। तत्कालीन एजुकेशन कौन्सिल के सेक्रेटरी डाक्टर मयेरसाहब ने ईश्वरचन्द्र को उक्त पदपर नियुक्त करने का अभिप्राय प्रकाशित किया।

उन्होंने नाना कारण दर्शाकर प्रथमतः अस्वीकार किया पीछे मयेर साहब के सुविशेष यत्न और आग्रह प्रकाशित करने पर उन्होंने कहा यदि शिक्षा-समाज उनको अध्यक्ष के पदपर नियुक्त करे तो मैं यह पद ग्रहण कर सकता हूं। अनन्तर वे सन् १८५०ई० के दिसम्बर मास में ९०) रु० वेतन पर संस्कृत कालेज में साहित्य शास्त्र के अध्यक्ष पदपर नियुक्त हुये। उनके परम मित्र वा० रामकृष्ण वन्द्योपाध्याय महाशय उस

समय जार्डन कम्पनी हाउस में सियारीपद पर नियुक्त थे। ईश्वरचन्द्र ने यत्न पूर्वक बाबू को कालेज के हेडराइटर के पद पर नियुक्त करा दिया। ईश्वरचन्द्र कुछ दिन साहित्य श्रेणी को पढ़ाते रहे। इसी अवसर में बा०रसमयदत्त महाशय ने संस्कृत कालेज के सेक्रेटरी के पद को छोड़ दिया। उस समय कैसी व्यवस्था करने पर संस्कृत कालेज की उन्नति होगी? इस विषय की रिपोर्ट देने की आज्ञा हुई तदनुसार उनकी रिपोर्ट से सन्तुष्ट हो शिक्षा-समाज ने उन को संस्कृत कालेज के अध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया। इतने दिन तक संस्कृत कालेज की अध्यक्षता का काम सेक्रेटरी व असिस्टेन्ट सेक्रेटरी द्वारा निर्व्वाहित होता था। इस समय ये दो पद शून्य होने पर उन को १५०) रु० वेतन पर प्रिन्सिपल के पद पर नियुक्त किया। उस समय वे निरन्तर चिन्ता करने लगे कि किस प्रवन्ध से कालेज की सम्यक उन्नति होगी? उन्हो ने श्रीशचन्द्र विद्यारत्न को साहित्य श्रेणी के अध्यापक के पद पर नियुक्त किया। आवश्यकीय पुस्तकों का मुद्रण भली प्रकार से किया।

६-७ मास पीछे वे अत्यन्त पीड़ित हो गये। अनेक यत्न करने पर भी आराम न हुये। इसी समय एक भयानक दुर्घटना यह हुई कि उन के प्रधान सहायक लेजिस्लेटिव कौन्सिल के मेम्बर और शिक्षा-समाज के प्रेसिडेन्ट भारत हितैषी विद्योत्साही महा-महोदय बेथून साहब का परलोक हो गया। ईश्वरचन्द्र संस्कृ-

त कालेज व अन्यान्य कालेज की भविष्यत उन्नति के हेतु एवं ज़िले २ में विद्यालय स्थापन करने के हेतु विद्योत्साही वेथून साहव के गृह निरन्तर जाते थे।

महामति भारत हितैषी वेथून साहव ने भारत वर्ष की महिला लोगों की विद्या-शिक्षा के लिये सब से प्रथम कलकत्ता महानगरी में कन्या विद्यालय स्थापित किया। प्रथमतः स्त्री शिक्षा के नाम से नगरवासी अत्यन्त चिढ़ते रहे उन्होंने नाना प्रकार के उपद्रव नाना प्रकार के विघ्न को उपस्थित किये किन्तु ईश्वरचन्द्र ने क्रमशः यह सब आपत्तियों को झेलकर नाना प्रकार की उपदेशसभा, समिति, व कमेटी द्वारा वेथूनफ़ीमेल स्कूल की उन्नति कर दिखाई वे ग्रामवासियों के गृह जाकर बड़ी जांच करके जिस का जो अभाव होता पूरा कर उसे दूर करते थे। वह प्रायः गुप्तरूप से दान देते थे। एक दिवस एक भले मनुष्य ने पूछा महाशय गुप्तदान का क्या प्रयोजन है ? उन्होंने उत्तर दिया यदि सब के सन्मुख लेने वाले को लज्जा प्राप्त हो इस हेतु गुप्त भाव से देना चाहिये। जो प्रकाश दान करते हैं वे प्रतिष्ठा लाभ के अर्थ करते हैं। मैं सबके सामने किसी को कुछ नहीं देता। लोगों का कष्ट देखकर ही देता हूं। नाम व प्रतिष्ठा की मुझे आवश्यकता नहीं है। उस समय केवल ब्राह्मण और वद्य संस्कृत सीख सकते थे किन्तु ईश्वरचन्द्र के उद्योग से अब तक शूद्र जातीय सन्तान गण भी संस्कृत कालेज में प्रविष्ट

हो विना किसी बाधा के संस्कृत सीखते चले आते हैं यह उन्हीं का यत्न उद्योग और आग्रह था कि शूद्रगण की संस्कृत शिक्षा प्रचलित हुई। संन् १८५८ साल के अगहन मास में उन्हों ने छोटी उम्र के बालकों के प्रथम संस्कृतभाषा के अध्ययन के लिये व्याकरण की उपक्रमणिका नामक पुस्तक रचना कर छपाई व प्रकाशित की जिसके द्वारा विद्यार्थी बालक गण ६ मास में ही संस्कृत भाषा सीखने के योग्य हो सकें। सन् १८५८ साल के अगहन में संस्कृत ऋजुपाठ नामी पुस्तक मुद्रित कर प्रचारित की। फाल्गुण में रामायण के कुछ श्लोक उद्धृत कर दोयम भाग ऋजुपाठ मुद्रित किया। पीछे हितोपदेश के सरल गद्य एवं महाभारत, विष्णुपुराण, ऋतुसंहार, वेणीसंहार, व भट्टिकाव्य आदि का कुछ अंश लेकर तृतीय भाग ऋजुपाठ मुद्रित व प्रकाशित किया।

उन की इन पुस्तकों के न होने से विषयी लोग कभी संस्कृत न पढ़ सकते फलतः विद्यासागर महाशय ही संस्कृत भाषा सीखने के सहज प्रदर्शक थे।

कलकत्ते में गरमी अधिक पड़ती थी इसलिये वैसाख व ज्येष्ठ दो मास के निमित्त छुट्टी ले बीरसिंह पहुंचकर पिता माता भाई भगिनी और प्रतिवेशी बन्धुवर्ग का साक्षात् किया। दूसरे दिन से गाँव वाले निरुपाय लोगों को बुला कर कुछ देकर सहायता करने लगे यह देखकर पास

के अनेक लोगों ने उनको धनवान समझा। मालूम होता है कि, इसी कारण गाँव के लोगों के कहने से वैसाख महीने में उनके गृह डकैती हुई। उस समय देश हितैषी हालिडे साहिब लेफटीनेगट गवर्नर के पद पर अभिषिक्त हुये। उस समय एडुकेशन कौन्सिल के सेक्रेटरी डाक्टर मयेरसाहब ने कुछ दिनों के लिये स्वदेश की यात्रा की। होलिडे साहब बहादुर ने लफ्टेन्ट गवर्नर होकर, उक्त शिक्षा समाज का परिवर्त्तन कर दिया था। एडुकेशन कौसिल की जगह पवलिक इन्स्टीट्यूट नाम रक्खा था। सेक्रेटरी नाम न रखकर, डाइरेक्टर पद स्थापन किया था, इस पद पर गर्डन इअङ्ग साहब को नियुक्त किया था। उस समय विद्यासागर ने उनसे कहा कि आपने अल्प अवस्था के सिविलियन विद्यार्थी को इतना बड़ा पद दिया यह अच्छा नहीं किया। साहब ने कहा, आप इस बालक को पढ़ाइये, इन्होंने वैसा ही किया।

ईश्वरचन्द्र शैशवकाल से इस विषय का मनही मन आन्दोलन करते थे। कि मैं जन्म भूमि बीरसिंह और उसके पास वाले ग्रामवासी लोगों व बालकों के मोहान्धकार निवारण की इच्छा से विद्यालय स्थापन करूंगा। किन्तु अभाव प्रयुक्त विद्यालय स्थापन करने की बात अब तक कह नहीं सके। इस समय ये मासिक ३००) रु० वेतन पाते थे और वेताल पचीसी। जीवन चरित, बंगला का इतिहास, उप-

क्रमणिका, और वोधोदय आदि पुस्तकों के विक्रय का लाभ भी यथेष्ट होता था। इस कारण चारों भाइयों के सहित फाल्गुण मासमें जलके मार्ग से वह गृह गये। एवं वहां पहुंच कर पिता जी से कहा आप देश में पाठशाला कर देश के लोगों को विद्यादान करें। यह वात आप प्रायः कहा करते थे। इस समय आप के आशीर्वाद के प्रभाव से अवस्था भली हुई है अतएव मैं वीरसिंह में एक विद्यालय स्थापन करने की इच्छा करता हूं।

यह सुन कर माता और पिता ने परम आल्हादित हो उनका मुख चुम्बन कर आल्हाद प्रकाश किया। दूसरे दिन स्थान नियत हुआ। ज़िमीदार रामधन चक्रवर्ती आदि को मूल्य देकर कवूलियत पत्र लिखा लिया। दूसरे दिन मज़दूर न मिले यह देखकर स्वयं कुदाली लेकर भाइयों के साथ मट्टी खोदना शुरू कर दिया। पीछे विद्यालय शीघ्र निर्माण करने के लिये पिता को हज़ार रुपये देकर कलकत्ते को चले गये।

१८५६ खीष्टाब्द के चैत्र मास में मध्यम और द्वितीय सहोदर और ततकालीन निवासगृह में जो २ आत्मीय संस्कृत कालेज की उच्च श्रेणी में पढ़ते थे उनको देश के बालकों की शिक्षा कार्य्य के सम्पादनार्थ नियुक्त कर दिया। विद्या भवन प्रस्तुत होने में ४ मास और लगेंगे। इस कारण देश के

निवास स्थान में फालगुण मास में विद्यालय स्थापित हुआ। इसके पहिले इस प्रदेश में कोई स्कूल स्थापित नहीं हुआ था। स्थानीय अनेक लोगों का विचार था कि स्कूल में पढ़ने से बालक कुप्टान होजाता है और नास्तिक हो जाते हैं तथा जाति भ्रंश हो जाते हैं। किन्तु क्रमशः उपदेश देने पर उन्नति होने लगी पास के ग्रामों से भी बालक आने लगे। बालकों की दशा अतिदीन थी प्रायः पुस्तक क्रय करने में भी असमर्थ थे अतएव ईश्वरचन्द्र ने प्रायः ३००) रु० की पढ़ने की पुस्तकें और कागज़ दिये। किसान के लड़कों के लिये नाइट स्कूल भी स्थापित किया गया। जिसमें सब विना मूल्य औपधि पाते थे। आस पास के गावों में चिकित्सक स्वयं विना फ़ीस के जाकर औपधि व पथ्यादि भी प्रदान करते थे। बालिका विद्यालय भी स्थापित हुआ। ४००) मासिक विद्यालय का। ३०) बालिका विद्यालय का १००) चिकित्सालय का व १५) मासिक नाइट स्कूल का खर्च था। अंगरेज़ी बालिका विद्यालय भी स्थापित हुआ। सार्व्वतोभाव अच्छी तरह से प्रत्येक प्रबन्ध होता था। उस समय ईश्वर-चन्द्र का मासिक वेतन ३००) ऊपरी कामों का वेतन २००) वपरिभ्रमण का स्वतन्त्र व्यय नियत था।

उस समय प्राट साहब एवं और दो अंगरेज़ स्कूल इन्स्पेक्टर नियुक्त किये गये। इस समय इङ्गलैंड के राजपुरुषों

के साथ शिक्षा विषय में परस्पर पत्र व्यवहार चलता था। शीघ्र स्कूल बैठाने के लिये इङ्गलैंड से आज्ञा पत्र आने पर वे शीघ्रता से स्थान २ में स्कूल बैठाने लगे किन्तु डाइरेक्टर इयं साहब आज्ञापत्र का विपरीत अर्थ कर शान्त रहे। दूसरे तीन स्कूल इन्स्पेक्टर एवं लेफ्टिनेण्ट गवर्नर होलिडे साहिब ने भी विपरीत अर्थ समझ उन्हें कुछ दिन के निमत्त स्कूल बैठाने से शान्त रहने को कहा। उनके शान्त न होने पर डाइरेक्टर ने यह विषय लेफ्टिनेण्ट गवर्नर को जनाया। लेफ्टिनेण्ट गवर्नर ने उन्हें बुला अनेक वादानुवाद के पीछे वह विषय विलायत में राज पुरुषों के गोचर किया। राजपुरुषगणों ने यह सम्वाद पा कर लेफ्टिनेण्ट गवर्नर बहादुर को शीघ्र विद्यालय स्थापित करने का आदेश भेजा एवं उसपत्र में ईश्वरचन्द्र की बड़ी प्रशंसा की। इसी सूत्र से उनके साथ डाइरेक्टर इयं साहब का वैर भाव बढ़ने लगा। यही अप्रणय उनके भावीपद परित्याग का मूल कारण हुआ।

विधवा विवाह।

ईश्वरचन्द्र शैशवकाल से ही पुरुष जाति की अपेक्षा स्त्री जाति के दुःख देखने पर अतिशय दुःख प्रकाश करते थे आत्मीय, अनात्मीय, निकृष्ट जाति, शुद्रजाति, निरुपाय, पति पुत्र विहीना किसी भी स्त्री की सहायता करने में कभी त्रुटि

नहीं की। पुरुष जाति की अपेक्षा स्त्री-जाति स्वाभाविक दुर्बल होती है इस कारण वे स्त्री-जाति के अधिक पक्षपाती थे। एक दिन बीरसिंह गृह के चण्डी मण्डप में उपविष्ट होकर वे अपने पिता से बीरसिंह के विद्यालयों के सम्बन्ध में वार्तालाप करते थे। ऐसे समय में माता ने रोदन करते करते चण्डी मण्डप में आकर एक बालिका के वैधव्य सङ्कट का वर्णन कर उनसे कहा तूने जो इतने दिन शास्त्र पढ़ा उसमें विधवाओं का कुछ उपाय है या नहीं। यह सुन पिता ने पूछा "ईश्वर! धर्मशास्त्र में विधवाओं के प्रति शास्त्रकारों ने क्या २ व्यवस्था की है।

उन्होंने उत्तर दिया शास्त्र में विधवाओं को प्रथमतः ब्रह्मचर्य्य में असमर्थ होने पर तथा विवाह बतलाया है। यह सुन पिताजी ने कहा कि लार्ड बेण्टिक गवर्नर जेनरल ने सती प्रथा को रोक दिया है और कलि में ब्रह्मचर्य्य में स्त्रियां असमर्थ हैं सुतरां विधवाओं के पक्ष में विवाह ही एक मात्र उपाय है। यह सुन उन्होंने कहा वेद शास्त्र पुराण व स्मृतियों का पाठ कर अनेक दिन से हमारी यह धारणा हुई है कि विधवा विवाह सिद्ध है। इसमें हमारा अणुमात्र संदेह नहीं एवं यह साधारण के हृदयङ्गम होगा किन्तु इस विषय की पुस्तक का प्रचार करने से अनेक लोग नाना प्रकार की निन्दा और कटुवाक्य का प्रयोग करेंगे। उसमें पीछे आप दुःखित हों इस आशङ्का

से मैं अभी हाथ नहीं देता हूं। यह सुन उन्होंने कहा हम दोनों एक वाक्य से कहते हैं इस विषय में जो कुछ सहायता करना होगा वह करेंगे। एवं हम को जिस समय जो करना हो करेंगे। उस में कुछ भी त्रुटि नहीं करेंगे। किन्तु तुम पुस्तक प्रचार करने के आगे और एक बार धर्म्म शास्त्र भली भाँति देख कर प्रवृत्त हो। प्रवृत्त होने पर किसी प्रकार तुम पीछे न हटना यहाँ तक कि हम तुम्हारे माता पिता हैं हमारे भी निवारण करने पर भी शान्त न रहना।

यह सुन बड़े यत्न के साथ इस विषय की जांच में प्रवृत्त हो गये एवं कई मास तक रात्रि दिन परिश्रम कर समस्त धर्म्म शास्त्रों का आद्योपान्त अवलोकन कर यथा साध्य प्रयत्न कर साधारण के गोचरार्थ ई० १८५५ साल व सम्वत १९१२ साल के कार्तिक मास में बङ्ग भाषा में अनुवाद सहित विधवा विवाह की व्यवस्था पुस्तक का प्रचार किया। प्रचार होते ही लगभग एक सप्ताह के बीच प्रथम छपी हुई २००० पुस्तकें बिक गईं यह देख उत्साहित हो और ३००० पुस्तकें मुद्रित की वे भी शीघ्र ही शेष हो गईं। यह देख पुनर्व्वार दश सहस्र पुस्तकें मुद्रित कीं। अति शीघ्र बहुत प्रचार देख कर वे अत्यन्त अल्हादित हुये। प्रायः समस्त भारतवर्ष में एक प्रकार का कोलाहल मच गया और अनेकानेक व्यक्ति उनके विरोधी हो गये और नाना प्रकार के दुर्वचनों

से उनकी प्रतिष्ठा भंग करने लगे। अनेक लोगों ने श्रम व व्यय स्वीकार कर एक उत्तर पुस्तक मुद्रित और प्रचारित कर उनके निकट भेजी। उन्होंने वह पुस्तक देख शास्त्र-रूपी जलधि को मथ कर प्रत्येक के हिसाब से प्रत्येक प्रत्युत्तर के परिच्छेदादि लिखवा इकट्ठी कर द्वितीय पुस्तक मुद्रित की। इस पुस्तक के प्रचारित व दृष्टमात्र होते ही समस्त भारतवासी निरुत्तर हो गये। और मनही मन भारतवासी हिन्दुओं ने विधवा विवाह की शास्त्रीयता भी स्वीकार की किन्तु देशाचार के विरुद्ध होने के कारण विवाह से पराङ्मुख रहे।

ईश्वरचन्द्र ने धर्म्म-शास्त्र के विचार में बङ्गदेश के सब प्रधान २ पंडितों को पराजित किया। देश के सब स्त्री-पुरुष उनका गुणानुवाद करने लगे। कोई कोई लोग गालियां भी देते रहे किन्तु उन्होंने उस ओर ध्यान न दिया। क्रमशः गवर्नमेन्ट द्वारा विधवा विवाह का आईनपास हुआ। विधवा विवाह होने पर विधवा का गर्भजात पुत्र। वह सजात पुत्र कहलाकर पैतृक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होगा। यह व्यवस्था विधिबद्ध हुई। अंग्रेज़ी १८५६ ईस्वी के १३ जुलाई को यह आईन पास हुआ इसका नाम १८५६ साल का १५ आईन हुआ।

सन् १८६२ साल की पहिली बैसाख को वर्ण परिचय

प्रथम भाग, व पहिली आषाढ़ को उसका द्वितीय भाग फाल्गुण में कथामाला व १८६३ की पहली श्रावण को चरिता· वली अनेकानेक पुस्तकें मुद्रित व प्रकाशित कीं। उस समय विधवा विवाह कार्य्य अत्यन्त आश्चर्य्य प्रद था और किसी को करने का साहस न होता था प्रायः सब लोग बाट जोहते थे। उपद्रवी लोग नाना प्रकार उपद्रवों को उपस्थित करते थे पहिले एक विवाह होने पर देख सुनकर और भी विवाह होने लगेंगे ऐसा आन्दोलन सब लोग करते थे। सन् १८६३ साल की २४ अगहन को सर्व प्रथम महासमारोह पूर्व्वक एक विधवा कन्या का विवाह किया गया पर समस्त कलकत्ता निवासी व दूर २ के लोग उपस्थित थे। पहले लोगों ने विघ्नडालने का पूर्ण प्रण कर लिया था कि जिससे विवाह न होने पावे।

किन्तु राज प्रवन्ध के कारण शान्ति पूर्व्वक कार्य्य समाप्त हुआ। इसमें ईश्वरचन्द्र का वहुत द्रव्य व्यय हुआ इस प्रकार उन्होंने इस का मार्ग खोल कर अनन्तकाल स्थायी कीर्तिस्तम्भ स्थापित किया। क्रमशः १०।१५ विवाह उसी वर्ष में हुये। इस प्रकार अनेक विवाह होने लगे व मार्ग साफ़ हो गया। १८६८ ई० के शेष में विद्यासागर महा· शय ने रिज़ाइन पत्र दे दिया और संस्कृत कालेज के प्रिन्सिपल का पद परित्याग कर दिया (छोड़ दिया)

यद्यपि लेफ्टिनेन्ट गवर्नर साहब इस्तीफा मंजूर नहीं करते थे। उनको और २ लोगों ने इस्तेफ़ा वापिस ले लेने को उन्हें बहुत समझाया किन्तु उन्होंने किसी की एक न सुनी।

स्वाधीनावस्था।

ईश्वरचन्द्र महाशय ने उद्योग से यत्न पूर्वक अनेक जिलों में व अनेक ग्रामों में बालिका-विद्यालय स्थापन किये। वे उन का कार्य्य सुचारु रूप से स्वयं चलाते रहे। बालिकाओं को उचित पारितोषिक प्रदान करते थे। जिनके पास पुस्तकें न होतीं उन्हें पुस्तकें दी जातीं, वस्त्रहीन को वस्त्र व भोजन हीन को भोजनादि का प्रबन्ध कर दिया जाता था। सम्पूर्ण व्यय स्वयं निजके रुपये से करते थे। लोगों के उपकार के लिये सोम प्रकाश नाम का एक पत्र निकाला। इस प्रकार कितने ही लोगों का प्रतिपाल होता रहा। १८५६ खीष्टाब्द में मेट्रिपोलिटन इन्स्टिट्यूट स्थापित किया। उसमें नितान्त दरिद्र बालक बिना बेतन पढ़ सकते थे। अनेक दरिद्र बालकों को पुस्तक व निवास स्थान तक की सहायता निज व्यय से करते थे। अन्यान्य विद्यालयों में शिक्षकगण छात्रों को मारा करते थे, किन्तु वे अपने विद्यालय में मार वा दुर्वाक्य का प्रयोग कदापि नहीं करते थे। यदि कोई शिक्षक बालकों को

मारता वा दुर्व्वाक्य कहता उसको उसी समय निकाल देते थे ।

क्रमशः स्कूल की उन्नतिकर एक एफ.ए. क्लास खोल दिया व उसका उत्तम प्रबन्ध हो गया है। १८७६ खीष्टाब्द में बी. ए. क्लास खोला गया। प्रति वत्सर बी. ए. परीक्षार्थी विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने लगी व प्रायः ६० विद्यार्थी परीक्षोत्तीर्ण हुये। १८८४ ई० के ला क्लास खोला गया। सन् १८८५ ई० में बी. एल. परीक्षा में मेट्रोपालिटन कालेज ने सर्वोत्तम देख यह गवर्मेन्ट ने कलकत्ता गज़ट में उस कालेज की बहुत प्रशंसा कर एक रेज्यू-लेशन प्रकाशित किया। सन् १८८७में कालेज व स्कूल नये मकानमें स्थापित किया गया। भूमिक्रय कर इमारत निर्माण आदि कार्य्य में प्रायः १ लक्ष तीस हज़ार रुपये व्यय हुये थे। १८७४ साल में श्यामशङ्कर ब्रेञ्चस्कूल में स्थापित हुआ। १८८५ खीष्टाब्द में वहू बाज़ार एवं १८८७ खीष्टाब्द में बड़ा बाज़ार और बालाखाना ब्राञ्च में स्कूल स्थापित किये। १८८८ खीष्टाब्द की पहिली भाद्रपद बृहस्पतिवार को स्त्री के परलोक गमन करने से वे नाना प्रकार की दुर्भावनाओं में अभिभूत हुये एवं क्रमशः उन की शारीरिक व मानसिक अवस्था की अवनति होने लगी। उन्होंने तव बोधिनी पत्रिका में कई प्रबन्ध लिखे थे। महाभारत का उपक्रमणिका ३७ अध्याय बङ्गला में अनुवाद कर प्रकाशित किया व १८६० खीष्टाब्द में फिर उस को सफाई से मुद्रित

कराया था। उसी वर्ष उन्होंने कृष्णदास पाल को हिन्दू पेट्रियर का स्वत्व विना मूल्य समर्पित कर दिया। गोविन्दचन्द बाबू ढाका जिले के मुंसिफ़ थे। दुर्भाग्य, प्रयुक्त वे कर्म्मच्युत हो गये यह सुन ईश्वरचन्द्र ने उन्हें १५०) के नायब के पदपर नियुक्त करा दिया। कई वर्ष पीछे उन्होंने नौकरी छोड़ दी इस कारण उन के भतीजों का पढ़ना बन्द हुआ यह सुन कर विद्यासागर अत्यन्त दुखित हुये और उन के भाई गोकुलचन्द को अपने प्रेस में ५०) रु० का मैनेजर कर दिया। एक समय मैनेजर ने विना कहे २०००) रुपये अपने ख़र्च में लगा दिये किन्तु वे कुछ भी उन से असन्तुष्ट न हुये। इस घटना के कुछ मास पीछे नीलकमल बाबू ने अभियोग लगा कर गोकुल बाबू का गृह नीलाम कराना चाहा।

गोकुलचन्द ने यह समाचार उन्हें सुनाया सुनते ही उन्हों ने उसे प्रायः सहस्र मुद्रा प्रदान कर उस का गृह नीलाम होने से बचा दिया। इसी प्रकार श्यामाचरण चट्टोपाध्याय का गृह ५००) देकर नीलाम होने से बचाया। निराश्रय लोगों के प्रति पालन के लिये १८४७ साल व बङ्गला १२५४ साल में संस्कृत डिपाजिटरी स्थापित कर ब्रज बाबू को उस अधिकार दे दिया ब्रज बाबू नीतिशाली और धनाढ्य मनुष्यह हो गये। सन् १२६२ अगहन मास में ब्रजबाबू के कार्य्य कलाप से वे असन्तुष्ट हो गये और डिपाजिटरो से स्वरचित व स्वप्रका-

शित पुस्तकें उठाकर कलकत्ता पुस्तकालय नाम का एक अलग पुस्तकालय स्थापित किया किन्तु डिपाजिटरी व्रज बाबूसे नहीं ली। सन् १२६५ के आषाढ़ व श्रावण मास में प्रायः १५ विधवा रमणियों के विवाह करवाये थे विवाह गावों में करवाये गये थे। और उन का समस्त व्यय स्वयं किया। इस प्रकार विधवा विवाह का प्रचार गांव २ में कर दिया और बहु संख्यक विवाह हुये। सन् १२६५ साल अगहन मास के शेष में पितामही का मरणकाल उपस्थित देख वीरसिंह से गङ्गातट पर ले आये उन्होंने २० दिन आहार केवल गङ्गाजल पान कर गङ्गालाभ किया श्राद्धोपलक्ष में अनेक ब्राह्मणों व पंडितों ने जो विधवा विवाह के द्वेषी थे विचार किया व अनेक उपद्रव किये कि कोई भोजन करने न जाय कि जिस से पितृदेव मनोदुःख से देशत्यागी हो जावेंगे। वे अति सरल चित्त थे क्योंकि वे ऐसे महा उपकारी दयासागर के कार्य्य में कैसे विघ्न कर सकते थे। प्रायः पांच सहस्र से अधिक ब्राह्मणों का भोजन हुआ और बड़े समारोह के साथ रीति से प्रेतक्रियादि समाप्त हुये। निमन्त्रणार्थ रचित कविता यह है।

पौषस्य पञ्च विंशाहे रवौ मातुः सपिण्डनम्।
कृपया साध्यताम् धीरैं वीरसिंह समागतैः॥ १॥

उन्होंने लक्ष्मी नारायण चौधरी की ज़िमीदारी को नीलाम होने से बचाने के लिये प्रायः ३००० रुपया व्यय किया था।

थ उन की स्त्री को गुप्त भाव से ६०) रु० मासिक देते रहे कि जिस से उन को कोई कष्ट न होने पावे।

सन् १८६६ कार्तिक मास में गृह गये और अनेक पुरुष व विशेषकर अनाथा स्त्रियों का विशेष उपकार किया। उस समय वर्ष में २।३ बार गृह जाते थे। प्रत्येक बार ५००) नक़द व ५००) के वस्त्र लेजाकर निरुपाय स्त्रियों को बांट देते थे। अनेक दीन स्त्रियों का मासिक भी नियत कर दिया था किसी को ५ किसी को ८ किसी को १५) रु० जैसा आवश्यक समझते थे देते थे। सन् १८६८ की पहली वैशाख को "सीता का वन-वास" नामक पुस्तक-मुद्रित की। माइकेल मधुसूदनदत्त कलकत्ते की पुलिस इन्स्पेक्टरी छोड़ बिलायत गये थे वहां उन्हें ६०००) रुपये की आवश्यकता हुई जिसके पास अपनी सम्पत्ति रख गये थे उसने उन्हें कुछ उत्तर न दिया। यदि रुपये अदा न किये जाते तो उनको कारावास होता इस कारण उन्होंने विनीतभाव से विद्यासागर को पत्र लिखा। उन्होंने पढ़ते ही रुपये ऋण ले विलायत भेज दिये। विला-यत से लौटकर वे कलकत्ते आये कार्य्य चलाने के लिये २०००) रु० और लिये।

थोड़े दिनों में ही माइकेल ने परलोक को गमन किया। अतएव उपरोक्त ८०००) रु० सूद सहित चुकाने के लिये ईश्वर-चन्द्र को अपना प्रेस बेच देना पड़ा। उनके समान परहित

के लिये निज जीविका निर्व्वाहकी सम्पत्ति कौन वेच सकता है। बाबू रामकमल मिश्र व बाबू गोराचन्द्रदत्त की गिरफ्तारी का वारण्ट आया। ईश्वरचन्द्र ने ५००) दे, दोनों को बचा दिया। किन्तु उन दोनों ने शेष में रुपया अदा नहीं किया इसलिये ईश्वरचन्द्र का सूद सहित ८००) रु० ऋणदाता को देना पड़ा। दोनों की मृत्यु हो गई उनके गृह बहुत भूमि और सम्पति थी परन्तु वह रुपया नहीं दे सके।

जगमोहन तर्कालङ्कार विपद में पड़ आत्महत्या करना चाहते थे। उन्होंने विद्यासागर से विनय की कि ५००) उधार दीजिये, तो इस विपत्ति से छुटकारा हो जाय। विद्यासागर दुःखित हुये व ऋण लेकर उन्हें ५००) दे दिये। इसके पीछे उक्त तर्कालङ्कार ने कभी उन्हें अपने दर्शन तक न दिये। जहानाबाद के निकट किसी ग्राम के एक भट्टाचार्य को इसी प्रकार २००) रु० देकर ऋण से छुड़ाया था।

भाटपाड़ा निवासी साधारण शक्ति सम्पन्न नैयायिक श्रीयुत रखालदास न्यायरत्न महाशय को ८ वर्ष तक १०) रु० मासिक देते रहे कि जिससे उनका निर्व्वाह हो और वो गृह पर स्कूल स्थापित कर दर्शन शास्त्र पढ़ावें।

न्यायरत्न के परिवारवालों को वस्त्रादि भी देते थे। बीच२ में २०।२५ रुपये देकर सहाय करते थे। क्रमशः पाठशाला में उचित आय होने लगी व उसका खर्च भली भांति पूर्ण होने

लगा फिर सहायता की कोई आवश्यक्ता न रही।

सन् १८७२ साल के अगहन मास में ठाकुरदास ने स्वप्न देखा कि शीघ्र ही तुम्हारी निवासभूमि श्मशान हो जावेगी स्वप्न देख वे अत्यन्त दुःखित हुये। तदनन्तर विख्यात गंगा नारायण भट्टाचार्य्य को बुलाकर अपनी जन्म पत्री का फल दिखवाया. उन्होंने भी वही बात कही तब से देश में रहने की उनको इच्छा न रही। कई दिन पीछे काशीवास करने की इच्छा प्रकाशित की। ईश्वरचन्द्र और अन्यान्य दूसरे लोगों ने वहीं रहने को अनुरोध किया। उन्होंने कोई उपदेश न सुन अपना काशी में रहना ही स्थिर किया सुतरां काशीधाम में सुख स्वच्छन्दपूर्वक रहने का प्रबन्ध हुआ। ईश्वरचन्द्र ने कहा कि आपके जाने पर हमारा मन अत्यन्त व्याकुल होगा।

१८६६ साल में जब राजा प्रतापचन्द्र सिंह उदरोदक रोग में बीमार हुये। उस समय ४ मास तक ईश्वरचन्द्र ने उनकी यथाविधि चिकित्सा के लिये विख्यात डाक्टर सी० आई० ई० बा० महेन्द्रनाथ सरकार को साथ लेजाकर निःस्वार्थ भाव से उनकी जीवनरक्षा के निमित आन्तरिक यत्न करते रहे थे। राजा ने काशीपुर में गङ्गा के तीर मृत्यु के पूर्व उनसे स्वीय सम्पति के उत्तराधिकारी बनने का अभिप्राय प्रकाश किया था किन्तु वे राजी न हुए असम्मत होने से राजा अत्यन्त दुखित हुये थे। राजा की मृत्यु के उपरान्त उन्होंने

अनेक यत्न कर व महान कष्ट उठाकर उनके राज्य के बड़े स्टेट को कोर्ट आफ़ वार्डस् में देकर अति उत्तम प्रबन्ध कराया और नाबालिग राजपुत्रों की शिक्षा का सुप्रबन्ध करा दिया। इन प्रबन्धादि कार्य्यों में उनका दो सहस्र मुद्रा से अधिक व्यय हुआ। नाना स्थानों में गमन करने में जो व्यय होता था वह कभी किसी से नहीं लेते थे। ऐसे सुप्रबन्ध से उस राजस्टेट ने स्वल्प दिन में ही ऋण जाल से छूटकर मुक्ति लाभ की ईश्वरचन्द्र धनशाली और दरिद्र दोनों को समान समझते थे। प्रायः सड़क के किनारे सामान्य मोदी के कुशल प्रश्न करते ही अपनी गाड़ी को ठहरा देते थे। व उसकी दूकान में घन्टों बैठे रहते थे।

होमियोपैथी।

ईश्वरचन्द्र ने होमियोपैथी चिकित्सा सीखकर चिकित्साका आरम्भ कर दिया और मध्यम सहोदर दीनबन्धु न्यायरत्न की पुस्तक व औषधियों का बक्स दे वीरसिंह में चिकित्सा करने को भेजा। वे देश में बड़े उत्साह के साथ रोगियों की चिकित्सा करने लगे और अनेक लोगों को होमियोपैथी चिकित्सा सिखाई। यद्यपि इनके अनेक छात्र नाना स्थानों में रहकर चिकित्सा करते थे।

वे प्रतिवर्ष रहकर कम्पनी द्वारा आर्डर देकर विलायत

से अनेक रुपयों की होमियोपेथी पुस्तकें मंगवाकर प्रचार के लिये अनेक लोगों को बिना मूल्य बाँटते थे।

१८७७ से प्रति वर्ष प्रायः २००) रुपयों की औषधियां और पुस्तकें लेकर बांटते थे। अनेक लोगों को जिनको ऐलोपेथी का अभ्यास था व जिनको होमियोपेथी करने की इच्छा थी, होमियोपेथी की तालिका बतलाने के लिये बङ्गाल होमियोप्याथी डिस्पेन्सरी के स्वामी अपने आत्मीय बाबू लालबिहारी मिश्र महाशय को उक्त चिकित्सा की शिक्षा और परीक्षा करने को देते थे। उनका इतना सद्गुण था कि एक दिन उक्त लालबिहारी बाबू की डिस्पेन्सरी से अलमारी खोलकर पुस्तक देखने के समय वे अत्यन्त व्यग्र हो गये थे। एवं उक्त अलमारी से एक औज़ार उनकी वृद्धा अंगुली के ऊपर गिरा इससे इतनी भारी चोट लगी कि उनको प्रायः एक मास तक शय्या पर पड़े रहना पड़ा किन्तु इस कारण कि कहीं चोट लगने के समय पहिले लालबिहारी के मन में दुःख होवे इन्होंने ज़रा सा उंह नहीं किया। सहज भाव से पुस्तकादि देख निज गृह की ओर गमन किया जितनी होमियोपेथी पुस्तकें विद्यासागर महाशय की लाइब्रेरी में हैं वैसी दूसरे के पुस्तकालय में दिखाई नहीं देंगी।

एक साल इस प्रदेश में अनावृष्टि होने से कुछ भी धान्यादि खाद्य उत्पन्न नहीं हुआ उस समय साधारण लोगों

का समय काटना कठिन हो गया। पौष मास में किसी किसी कृषक के यहाँ सामान्य धान्य हुआ था वह भी प्राय महाजनगण ने ले लिया कृषकों के गृह कुछ भी धान्य न था। दुःसमय में गरीबों को कुछ भी काम काज करने को नहीं मिलता था जो नित्य मजदूरी कर दिनपात करते थे उनको दिन व्यतीत करना कठिन होगया। उस समय रुपये में पाँच सेर चावल विकते थे वह भी सब समयों में प्राप्त थे। माघ फाल्गुण और चैत्र इन तीन महीनों में अनेक लोगों ने अपने थाली लोटे और अलङ्कारादि बेंचकर कुछ प्राण बचाये थे पीछे चावल खरीदने में असमर्थ हो गाजर अरवी व आलू आदि खाकर दिनपात करने लगे। एवं कितनेही भूख प्यास के कारण काल के कवर बन गये। सैकड़ों आदमी अपनी सब जायदाद विक्रय कर पेट की ज्वाल में कलकत्ते जा भीख माँगकर उदरपूर्ति करते थे। उस समय कोई जाति का विचार नहीं करता था। माता पुत्रों को रास्ते में फेक कलकत्ते को प्रस्थान कर रही थी। अनेक कुलकामिनियों ने आत्याभिमान जलाञ्जलि दे दिया। चारों ओर हाहाकार शब्द था कोई किसी पर दया नहीं करता था सभी अन्न चिन्ता में व्याकुल हो गये थे।

ईश्वरचन्द्र ने वीरसिंह ग्राम को लिखा कि मैं स्वग्राम वीरसिंह और उसके सन्निहत (निकटस्थ) ५।६ ग्रामों के

दरिद्र लोगों को रोज भोजन करा सकूंगा। अन्यान्य ग्राम-वालों को कैसे खिला सकूंगा। क्योंकि हम धनी नहीं हैं। अतएव विद्यासागर ने इस विषय में गवर्नमेंट को रिपोर्ट की और आप पास के ग्रामों में भ्रमणकर अनन्यमना हो लोगों के द्वार जाकर निरुपाय लोगों और अनाथा स्त्रियों की एक प्रस्तुत की। ग्राम से यथेष्ट चन्दा करके कई विख्यात बड़े बड़े ग्रामों में अन्नक्षेत्र स्थापित किये गये गवर्नमेंट की ओर से भी अन्न क्षेत्र स्थापित करा दिये और ऐसा उत्तम प्रबन्ध होगया कि प्रत्येक निरुपाय भूखा मनुष्य किसी क्लेश के बिना यथेष्ट भोजन पा सके जो भद्र लोग वहाँ भोजन करने से संकोच करते थे उनके यहां सीधा पहुंचा दिया जाता। क्रमशः सम्पूर्ण प्रबन्ध होगये यहाँ तक कि स्त्रियों के माथे में डालने के लिये तेल भी बांटा जाता था। साग तरकारियां बदल बदल कर अर्थात् किसी दिन कोई किसी दिन कोई दी जाती थी। खिचड़ी, रोटी, दही, दुग्ध, चावल भी बदल बदल कर बांटा जाता था। अवैतनिक विद्यालय। बालिका बालकों का स्कूल और चिकित्सालयादि भी स्थापित किये। जो भद्र लोग रजिस्टर में नाम लिखाने व सीधा लेने में सङ्कोच करते उनको गुप्त रीति से मासिक रुपया मिलता था। सन्ध्या के उपरान्त वे स्वयं बगल में वस्त्र व रुपये दबाकर भले निरुपाय गृहस्थों के घर जाते और उनको

रुपये व वस्त्र देकर कहते कि यह किसी से प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं है। भद्र लोगों को वे नित्य छिपा कर दान देते थे। इसी प्रकार किसी के माँगनेपर प्रेतक्रियादि के लिये किसी को २०) किसी को १००) यहाँ तक कि २००) पर्यन्त देते थे। गवर्नमेंट के अन्न क्षेत्रों से उनके अन्न क्षेत्र में यह विशेषता रही कि वे निरुपाय क्षुधित आदि किसी से कुछ भी काम नहीं लेते थे। उनका प्रत्येक प्रबन्ध उत्तम था इस कारण से प्राय बहुसख्यक लोग उनके द्वारा ही प्रतिपालित होते रहे।

७४ साल के ज्येष्ठ मास में वीरसिंह के गृह का नया प्रबन्ध किया। मध्यम व तृतीय सहोदर व अपने पुत्र के पृथक पृथक गृह बनवाये गये। प्रत्येक के भोजन का प्रबन्ध पृथक पृथक रहा प्रत्येक का खर्च भी रीति के अनुसार अलग कर दिया। इसके पहिले ही दोनों बहिनों को पृथक पृथक प्रबन्ध हो चुका था। माता जी को अपने पास रखने की व्यवस्था की। इस प्रबन्ध का कारण यह था कि जिससे कभी कलह होने की सम्भावना भी न रहे व किसी को कुछ कष्ट न हो।

कुछ दिन पीछे जिस समय हुगली, वर्द्धवान, नदिया और मेदनीपुर इन चार ज़िलों के स्कूलों के स्पेशल इन्स्पेक्टर थे उस समय कई बार वर्द्धवान के विद्यालय को देखने आये थे। इसके कई वर्ष पीछे जिस समय मिस कार्पेण्टर कलकत्ते में

आईं। उस समय लेफिटनेएट गवर्नर के अनुरोध से उन्होंने मिस कार्पेएटर का साक्षात कलकत्ते के कई विद्यालय और कई रईस लोगों के अंतः पुरस्थ स्त्रियों के साथ कराया था एवं परिशेष में १८५६ में एक दिन मिस कार्पेएटर को साथ ले उन्हें बालिका विद्यालय दिखाने गये थे। वहाँ से लौटने के समय गाड़ी पर बैठे आ रहे थे। मोड़ पर फिरने के समय गाड़ी उलट पड़ी विद्यासागर महाशय गाड़ी से गिर अचेत होगए घोड़े के पैर के पास पड़े थे। तमाशे देखने वालों को साहस नहीं हुआ कि उन्हें घोड़े के नीचे से हटा लें अथवा न घोड़े को ही हटाले। स्कूल इन्स्पेक्टर उडरो साहब और विद्यालयों के डाइरेक्टर धारकिन्सन साहब ने यह देख शीघ्र ही घोड़े की लगाम पकड़ कर वहाँ से हटाया। घोड़ा न हटाने से घोड़े की टाप से ही आपके मृत्यु की होने की सम्भावना थी। उन्हें भूमि पर पड़ा बेहोशी अवस्था में देखकर मिस कार्पेएटर के चक्षुओं में जल आगया उन्होंने अपने उत्कृष्ट वस्त्र के द्वारा उनके शरीर की धूल पोंछी। बस उसी दिन से उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। कितनीही दवा दारू की गयी परन्तु अच्छी तरह से निरोग्य वह न हुए। पीछे कुछ दिन में कुछ अच्छे हुए जब अच्छी तरह से निरोग्य न हुए तब फिर कलकत्ते लौट आये। यहाँ भी अच्छे न हुए तब वैद्यों की राय से वर्द्धमान आये। उस समय उनकी माता मध्य २ में विद्या-

लय और विधवा विवाहादि कार्य्य देखने को पालकी द्वारा वर्द्धवान से बीरसिंह जाती थी। कितनेही दरिद्र बालक बालिका, युवा, वृद्ध, की ईश्वरचन्द्र यथेष्ट सहायता करते थे। प्रायः २।३ दरिद्र बालकों को साथ ले आते गृह में नौकरों की कोई कमी न थी तथापि उन्हें विना मतलब नौकर रख लेते थे कि जिनसे उनका प्रतिपालन हो कई दिन मकान में रह कर फिर वर्द्धवान चले आये। प्रायः एक मास प्यारी बाबू के गृह रहे कुछ स्वस्थता देख राज्य के एक बगीचे में रहे चारों ओर दरिद्र निरुपाय मुसलमान रहते थे। वे सब की अन्न, वस्त्र, इत्यादि से सहायता करते थे। कई लोगों को दुकान खोलने के निमित्त रुपया पैसा दिया था। कन्याओं के विवाह का समस्त खर्च देते थे। वर्द्धवान से आते समय किसी २ दिन हाजीपुर की दूकान पर ठहरते थे। पालकी ठहरते ही सैकड़ों बालक उन्हें घेर कर खड़े हो जाते थे वे सबको पैसे देते व मिठाई खिलाते। बालक परम खुशी होकर अपने घर चले जाते। उनमें एक नीच कौम का १२ वर्ष का लड़का उनसे चार पैसे पाकर वहीं खड़ा रहा। उन्होंने उससे पूछा कि तुम इन चार पैसों का क्या करोगे? उसने उत्तर दिया कि मैं इन के आम लाकर बेचूंगा तब ८ पैसे हो जायँगे। आज एक पैसे के चावल लाकर भात बना कर खाऊंगा। कल फिर सात पैसे के आम बेचने से १४ पैसे पाऊंगा और एक पैसा खाऊंगा।

यह सुन उसे वीरसिंह ले आये कुछ दिन रख उसे दूकान रखने योग्य रुपये दे बिदा कर दिया इसी प्रकार कितने ही लोगों को रुपया पैसा दिया करते थे। विधवा, हतभागिनी स्त्रियाँ, नाबालिग संतति के साथ उनके संमुख जब आकर खड़ी होती थीं तब वे उनके दुःख को सुन कर उनकी यथेष्ट सहयता करते थे। अनाथा स्त्रियों से उन्होंने कभी अप्रसन्नता प्रकाशित नहीं की। वे जितनी बार यहाँ आते थे उतनेही बार ५००) के वस्त्र मंगवा कर अनाथा स्त्रियों को बाँटते थे। एक बार गृह से वर्द्धवान जाते समय एक आत्मीय के घर गये यहाँ रात्रि भर रह सवेरे देखा कि गृह की दशा भली नहीं है अतएव उनसे कहा कि अपने गृह की दशा ठीक करो। यह कह वर्द्धवान जाकर गुप्त रूप से उसके गृह रुपये भेज दिये। भले मनुष्यों को वे गुप्त रूप से देते थे और उसे किसी पत्र में नहीं लिखते थे।

उनका एक हरकाली नामका रसोइया २५ वर्ष से कलकत्ते में रसोई का कार्य्य करता था। वही वर्द्धवान में भी था। यहाँ अनाथा स्त्रियाँ बारम्बार आतीं और हर बार ले जाती एक दिन हरकाली ने एक स्त्री से कहा मा क्या तूने विद्यासागर को लदा हुआ आम का पेड़ पाया है? यह सुन कर विद्यासागर ने कहा मैं दान करूंगा। तेरे बाबा का क्या है? हरकाली बोला इस वृद्धा को वस्त्र व रुपये लिये हुए एक

सप्ताह भी नहीं हुआ आपको स्मरण नहीं है इससे मैंने ऐसा कहा है। जो हो मेरा अपराध क्षमां कीजिये। तो भी उन्होंने उसे तुरन्त निकाल दिया। किन्तु बहुत विनती करने पर उसे फिर रख लिया और आगे के लिये समझा दिया।

१८६९ खीष्टाब्द में मलेरिया ज्वर से समस्त देश पीड़ित हो गया। यह देख उन्होंने निवास गृह में एक अस्पताल खोल दिया और कलकत्ते जा कर लेफ्टिनेएट गवर्नर बहादुर से समस्त विवरण कहा। उनके यत्न से वहाँ ४।५ अस्पताल व, २।३ ग्राम के अनन्तर पर अस्पताल खोल दिये गये और बहुत से डाक्टर बुलाये गये। जो लोग अस्पताल में नहीं जा सकते थे उनके गृह डाक्टर जाते थे। और पथ्यादि भोजन व वस्त्र शय्यादि बाटने का उत्तम प्रबन्ध कर दिया। गवर्मेंट की ओर से प्रबन्ध होने से भी उन्होंने स्वयं अपना बहुत सा द्रव्य व्यय किया सहस्रों रुपये के गरम वस्त्र व धोती कुरता आदि बाँटे। प्रत्येक गृह दूध साबूदाना व आरारोट इत्यादि पथ्य बाँटा जाने लगा। अधिक कहाँ तक कहा जाय रोगियों की सेवा के लिये नौकर व भोजन पथ्यादि बनाने के लिये रसोइयां नौकर रखे गये। विगत ७२ साल के दुर्भिक्ष के समय में जिन लोगों ने क्षेत्र में भोजन किया था वे अब क्या करते हैं यह जानने के लिये ईश्वरचन्द्र ने प्रयत्न कर एक तालिका बनवाई कि किस २ व्यक्ति को अत्यन्त अन्न का कष्ट

है, और कौन २ निराश्रय है ? पहले से जिस प्रकार निरुपाय मनुष्यों को और विधवा विवाह करने के लिये सब लोगों को खोज २ कर रुपया बाँटा गया था। उसी प्रकार इस तालिका में लिखे हुये व्यक्तियों को मासिक सहायता दी जाने लगी। ७४ साल के श्रावण मास में गोपालचन्द्र समाजपति के साथ उनकी बड़ी कन्या हेमलता देवी का विवाह हुआ।

घाँटाल माइनर अंगरेजी विद्यालय के स्कूल बनवाने के लिये उन्होंने ५००) दिये। ऐसा दान देख व सुन वहाँ के जिमींदारों ने आश्चर्य्य कर कहा कि यद्यपि हम ज़मींदार हैं तथापि १० वा १२ से अधिक की सहायता करने का साहस नहीं करते। ईश्वरचन्द्र बड़े दानी हैं।

ईश्वरचन्द्र ने हेरिसन साहब को वीरसिंह में निमन्त्रण कर भोजन करवाया था। उस समय ईश्वरचन्द्र की माता वहीं पर उपस्थित थीं। इस पर साहब बड़ा आश्चर्य करते थे कि अति वृद्धा हिन्दू स्त्री साहब के भोजन करने के समय चेयर पर बैठ बात चीत करने में प्रवृत्त हुयी थी। इस बात से उपस्थित लोग व साहब परम सन्तुष्ट हुये। साहब ने हिन्दुओं की भांति ज़मीन में बैठकर भोजन किया था और ईश्वरचन्द्र की माता को अपनी माता के समान अभिवादन किया था। तदनन्तर नाना विषयों पर बातचीत हुई। माता जी बड़ी बुद्धिमती थीं, उनका स्वभाव अति उदार था मन अतिशय

सरल और विकार रहित था, वे दूरदर्शी थीं। यह देखकर वे लोग अति सन्तुष्ट हुये। साहब ने ईश्वरचन्द्र से कहा कि माता के गुण से ही आप ऐसे असाधारण उन्नति को प्राप्त हुये हैं। पीछे साहब ने ईश्वरचन्द्र की मां से पूछा आप के पास कितने रुपये हैं? उन्होंने उत्तर दिया मेरे पास रुपये नहीं है एवं रुपयों की आवश्यकता भी नहीं है। जैसा चला आ रहा है ऐसा ही चला जावे व पुत्र कन्या छोड़ चली जाऊं तो मेरी सभी अभिलाषा पूर्ण हो जाय।

सन् १८७५ साल के चैत्र मास में वीरसिंह ग्राम के घर में अग्नि लगजाने से सब भस्म हो गया। ठाकुर देवता भी जल गये, विदीर्ण हो गये मध्यम भ्राता और जननी आदि सभी सोये हुए थे। भाग्यवश उन सब ने रक्षा पाई किन्तु कोई वस्तु बाहर नहीं की जासकी। यह संवाद सुन विद्यासागर देश आये और जननी को साथ लेकर कलकत्ते जाने का उपाय किया किन्तु माता ने कहा मैं कलकत्ते न जाऊंगी क्योंकि दरिद्र विद्यार्थियों व रोगी आदिकों को प्रतिपालन कौन करेगा तब उन्होंने वर्षाकाल सम्मुख देख सामान्य गृह बनवा दिया दयावती माता जी अपने हाथ से भोजन बनाकर असंख्य दीन दरिद्रियों को भोजन कराती थीं। विधवा विवाह व बालिका विद्यालय आदि के कार्य में ईश्वरचन्द्र पर प्रायः पचास हजार रुपया कर्ज हो गया था। इस कारण उस समय के एडुकेशन

गज़ट के सम्पादक बाबू प्यारीचरण सरकार व बाबू कालीकृष्ण मित्र दोनो महाशयों ने ईश्वरचन्द्र की उदारता को गज़ट में प्रकाशित करा दिया कि विद्यासागर देश का उद्धार करने में बहुत ऋणी हो गये हैं। अतएव उनके इष्ट मित्र लोग यदि कुछ कुछ सहायता करें तो वे बिना क्लेश ऋण से छुटकारा पा जांय। जिनकी सहायता करने की इच्छा होवे वे एजुकेशन गज़ट के सम्पादक प्यारी बाबू के पास भेजें। यह प्रकाशित होने के कुछ दिन में ही बहुत रुपया जमा हो गया। विद्यासागर गृह से कलकत्ते आये और यह सम्वाद सुनकर बड़े क्रोधित हुए और पत्र द्वारा सम्वादपत्र में प्रकाशित किया कि हे भाइयो! तुम हमारी रक्षा करो मैं किसी की सहायता ग्रहण न करूंगा। जिन जिन ने हमारे उद्देश्य से रुपया प्यारी बाबू के निकट भेजा है वे शीघ्र ही लौटा लेवें। अपने ऋण का परिशोध मैं स्वयं करूंगा। मेरे ऋण के लिये तुम को कोई चिन्ता न करनी होगी। पहिले की अपेक्षा हमारा ऋण बहुत कम हो गया है। जो अब बाकी है उसका शोध मैंही करूंगा। वे यद्यपि विधवा विवाह के एकान्त पक्षपाती थे किन्तु यदि कोई व्यक्ति आकर उनसे प्रार्थना करता कि मेरे पुत्र या मेरी पुत्री विधवा विवाह करने में मुझे अत्यन्त दुःख देवेंगे। तो वे उस विवाह से कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे। यदि कोई भुला कर करवा देता तो वे उससे अत्यन्त क्रोधित होते थे। यदि कोई

व्यक्ति अपने नाम को स्थिर रखने के लिये पोष्य पुत्र (दत्तक) लेने का विचार उनसे प्रगट करता तो उसको विद्यालय व चिकित्सालयादि स्थापित करने का परामर्स देते थे। वे परोपकार में जिस प्रकार अपने धन का व्यय करते थे। वैसे ही दूसरे को भी करने को कहते थे।

उनके परामर्श से बिहारी बावू ने एक लाख साठ हज़ार रुपया गवर्नमेंट में अमानत जमाकर दिया था उनकी। मत्यु के उपरान्त उस रुपये से दातव्य एन्ट्रेन्स स्कूल डिस्पेंस्सरी व अस्पताल स्थापित किये गये जो अभी तक चल रहे हैं। १८६६ साल में उन्होंने वेथून बालिका विद्यालय के सेक्रेटरी का पद छोड़ दिया।

नारायण का विधवा विवाह

सन् १८७७ साल की २७वीं श्रावण बृहस्पतिवार को उन के एकलौते पुत्र श्रीयुत् नारायणचन्द्र वन्ध्योपाध्याय ने खानाकुल कृष्णनगर निवासी शम्भुचन्द्र मुखोपाध्याय की विधवा लड़की श्रीमती भवसुन्दरीदेवी का पाणिग्रहण किया। ईश्वरचन्द्र विधवा विवाह के अधिपति थे। अब तक उद्योग कर उपदेश दे देकर लोगों का विधवा विवाह कराते थे; उनके वंश में आज तक विधवा विवाह का कोई कार्य्य नहीं हुआ था। इसलिये सबलोग कहते थे कि विद्यासागर

महाशय दूसरे के माथे कुल्हाड़ा चलाते हैं आप विवाह करें तो ठीक है। इस समय उनके पुत्र नारायण का विवाह होने से उनको और किसी के निकट निन्दा का पात्र न होना पड़ा विवाह समाप्त होने पर उन्होंने यह पत्र लिखा था—

शुभाशिषः सन्तु—

२७वीं श्रावण बृहस्पतिवार को नारायण ने भवसुन्दरी का पाणिग्रहण किया है। यह सम्वाद माताजी से और इष्ट मित्रों से कहना। इसके पहिले तुमने लिखा था नारायण के विधवा विवाह करने से हमारे कुटुम्बी महाशय आहार व्यवहार को छोड़ देवेंगे अतएव नारायण के विवाह का न करना आवश्यक है।

इस विषय में हमारा कथन यह है कि नारायण ने स्वयं अपनी इच्छा से यह विवाह किया है। हमारी इच्छा तथा अनुरोध से नहीं किया। जब सुना कि उसने विधवा विवाह करना स्थिर किया है एवं कन्या भी उपस्थित हुई है, उस समय उस विषय में सम्मति न देकर उसे रोक देना हमारे पक्ष में किसी प्रकार से उचित न था। मैं विधवा विवाह का प्रवर्तक हूं मैंने उद्योग कर अनेक विवाह करवाये हैं; ऐसे स्थान में मेरा पुत्र विधवा विवाह न कर कुमारी विवाह करता तो मैं लोगों के निकट मुख न दिखा सकता समाज में नितान्त नीच और मूर्ख बनता। नारायण ने स्वयं उद्यत होकर यह

विवाह किया है और हमारा मुखउज्वल किया है। अब लोगों के निकट हमारा पुत्र कहला कर परिचय दे सकेगा। विधवा विवाह चलाना हमारे जीवन का सर्व्व प्रधान कर्म है। इस जन्म में इसकी अपेक्षा और कोई सत्कर्म कर सकूंगा इसकी मुझे आशा नहीं है। एवं इस विषय के लिये अत्यन्त परिश्रम मैंने किया है। एवं आवश्यक होने पर प्राण देने में भी मैं पीछे नहीं होऊंगा। इस बात से कुटुम्बी लोग चाहे मुझे बुराभला कहें और वे लोग चाहे आहार व्यवहार का परित्याग करें। इस डर से यदि मैं पुत्र को उसके अभिप्राय के अनुसार विधवा विवाह न करने देता तो मेरी अपेक्षा नराधम और कोई न होता। अधिक और क्या कहूं। उसके स्वयं तयार हो कर इस विवाह के करने से मैं अपने को चरितार्थ मानता हूं। मैं देशाचार का नितान्त दास न नहीं हूं। अपने समाज के मंगल के निमित्त जो उचित वा आवश्यक होगा वही करूंगा। लोगों के व कुटुम्ब के डर से कभी भी अपने कार्य से पीछे न हटूंगा। अब हमारा यह कथन है कि समाज के डर से वा अन्य किसी कारण से नारायण के साथ आहार व्यवहार करने में जिसका साहस न हो वे स्वच्छंदतापूर्वक उसको अलग करदें।

इसके लिये नारायण दुःखित होगा ऐसा नहीं जान पड़ता एवं मैं भी इस लिये विरक्त तथा असन्तुष्ट नहीं हूं। हमारे

विचार से ऐसे विषयों में सभी लोग स्वतन्त्र हैं दूसरे की इच्छा के वशीभूत व अनुरोध का वशवर्ती होकर चलना किसी को उचित नहीं है।

आपका शुभकांक्षी
ईश्वरचन्द्र शर्मा।

सन् १८७७ साल का दूसरा फाल्गुण को काशी से पिता के बीमारी का पत्र आया जिसे पढ़ कर वे अत्यन्त दुःखित हुये एवं शीघ्र ही वीरसिंह में भाइयों को पत्र लिखा कि शीघ्र ही मैं काशी जाता हूं। तुम माताजी को सङ्ग लेकर काशी यात्रा करो। पढ़ते ही वे सब काशी पहुंचे पितृभक्ति परायण ईश्वरचन्द्र महाशय दो सप्ताह काशी रह शुश्रुषादि कार्य्य में दिन रात लगे रहे क्रमशः उन्होंने कुछ आरोग्यलाभ किया। काशी के मदनपुरा बंगाली टोला के मातङ्गीपद भट्टाचार्य्य का गृह बहुत छोटा था इसलिये उन्होंने सुनारपुरा के सोमदत्त का एक बड़ा गृह भाड़े पर लिया। मातङ्गीपद भट्टाचार्य्य ने देखा कि अब यह दूसरे गृह जाँयगे और हमारी आजीविका चली जायगी अतएव वे ठाकुरदास को अनेक उपदेश देने लगे। ठाकुरदास प्रति दिन सवेरे से गृह से निकल कर केदार घाट पर संध्यापूजन कर और सब देवतों के दर्शन करके संध्या के समय रसोई बना कर खाते थे। ठाकुरदास नित्य प्रति मातङ्गीपद को एक मोहर दक्षिणा में देते थे जिससे

उन्होंने थोड़े ही दिन में अपनी स्त्री को सोने के गहनों से लाद दिया था। और बड़े धनी हो गये थे। अनेक प्रकार की क्रिया कराके उन्होंने बहु संख्यक द्रव्य पाया था। अब उनके यहां से दूसरे घर में चले जाने पर मुझे कुछ न मिलेगा। यह सोच कर पुरोहित मातङ्गपद ने ठाकुरदास से कहा—पण्डितजी! शास्त्रों में लिखा है कि काशीवास करने के समय स्त्री-पुत्रों को अलग रखना चाहिये। इनके रहने से माया अत्यन्त होती है ईश्वर में मन नहीं लगता इसलिये आप अपने लड़के वालों को घर भेज दीजिये। मैं आपकी सब सेवा करूंगा आपको किसी तरह तकलीफ़ न होवेगी। तुम हमारे गृह जैसे रहते थे, वैसेही रहो तुम्हारे पुत्रगण नास्तिक हैं उनसे सम्बन्ध रखना उचित नहीं है।

ठाकुरदास ने कहा—हमारा पुत्र ईश्वर हमारी बड़ी श्रद्धा और भक्ति करता है वह सत्पुत्र है। हमारा कष्ट देख वह हमें बड़े घर में ले जाना चाहता है, मुझे भी ऐसे सत्पुत्र का कहना न मानना धर्म से विरुद्ध है। क्योंकि इस समय मैं वृद्ध हुआ हूं अतएव अपने पुत्र की बात का पालन करना हमारा अवश्य कर्तव्य है। यह कह के पुरोहित की बात पर ध्यान न देकर विद्यासागर के साथ नये मकान में चले गये। उस समय काशीस्थ दलपति ब्राह्मण निवास गृह में उपस्थित हो [illegible]रचन्द्र से बोले कि आपके पिता ने काशी में

अनेक प्रकार के कार्य्य किये हैं। हमने इनका बहुत कुछ सांथा है ये परम धार्मिक और क्रियावान हैं। पिता के पुण्य के प्रभाव से आप जगद्विख्यात हुये हैं। आप हमें ५, ७ हज़ार रुपया दान कर नाम करा दें। यह सुन विद्यासागर ने कहा आप पितृदेव से ही कहें वे आपको देवेंगे। क्योंकि मैं काशी दर्शन को नहीं आया। पितृ दर्शन को आया हूं। मैं यदि आप से ब्राह्मणों को काशी में दान देकर जाऊं तो मैं कलकत्ते में भद्र लोगों को मुख न दिखा सकूंगा। आप सब प्रकार के दुष्कर्म्म कर देश परित्याग पूर्व्वक काशी वास करते हैं। यदि आपकी भक्ति व श्रद्धा कर विश्वेश्वर को नहीं मानते। यह सुन ये बोले मैं तुम्हारी काशी वा तुम्हारे विश्वेश्वर को नहीं मानता। यह सुन ब्राह्मण क्रोधान्ध हो बोले, तो आप क्या मानते हैं। उन्होंने उत्तर दिया हमारे विश्वेश्वर व अन्नपूर्णा उपस्थित ये पिता और माता विराजमान हैं देखो जननी ने दस मास गर्भ में धारण कर कैसे कैसे कष्ट सहे हैं ऐसेही पिता और माता के अनेकानेक उपकारों का वर्णन कर ईश्वरचन्द्र ने कहा कि आप श्राद्ध के समय क्या कहते हैं।

पिता स्वर्गः पिता धर्म्मः पिताहि परमंतपः।
पितरि प्रीति मापन्ने प्रीयन्ते सर्व्वदेवताः॥१॥

यह सुन ब्राह्मण लोग लज्जित होगए और निराश होकर अपने २ घर चले गये। १५ फाल्गुण को उन्होंने अपनी जननी

व मध्यम व तृतीय सहोदर को पिता के शुश्रूषादि कार्य्य निमित्त वहीं छोड़ कलकत्ते की यात्रा की। कुछ दिन में ठाकुरदास ने अच्छी तरह आरोग्यलाभ किया। जननी ने फाल्गुण व चैत्र दो मास काशी में रह अनेकानेक निरुपाया अनाथा स्त्रियों का कष्ट दूर किया। १८७७ साल की चैत्र संक्रान्ति के दिवस माताजी ने विषम विशूचिका रोग में पीड़ित हो पति पुत्र-पौत्र और नाती आदि को छोड़ काशी वास किया। जननी का मृत्यु सम्वाद सुन कर ईश्वरचन्द्र बड़े ही शोकातुर हुए। दिन रात रो २ कर अपना समय विताते थे। उपरान्त गंगाजी के तट पर उनकी अन्तेष्ठि क्रिया की और शास्त्रोक्त विधिपूर्वक उनका श्राद्धादि कार्य्य समाप्त किया। शास्त्रानुसार १ वर्ष तक वे एक समय भोजन वनाकर खाते थे। जूता, छाता, पलंग, स्वादिष्ट भोजन आदि और समस्त सुख उन्होंने एक वर्ष तक छोड़ रक्खा था। कई मास तक तो वे खाली बैठे माता के शोक में अकेले बैठे रोया करते थे उस समय सब काम छोड़ दिया था।

बहु-विवाह खंडन।

सन् १८७८ साल की १ ली श्रावण को उन्होंने बहुविवाह खंडन नामक पुस्तक प्रकाशित की यद्यपि अन्यान्य विद्वानों ने इस के पीछे प्रतिवाद किया कि बहु-विवाह शास्त्र सम्मत है शास्त्र विरुद्ध नहीं है फिर ईश्वरचन्द्र ने प्रतिवादियों का मत

खंडन कर यह दिखाया कि बहु-विवाह बड़ा ही बुरा और बड़ा ही निन्दनीय कार्य है यह शास्त्र विरुद्ध है। इस से बड़ी हानि होती है। विशेष कर स्त्रियों की बड़ी ही कुदशा होती है उपरान्त उन्होंने बड़े परिश्रम कर शास्त्रों से प्रमाण खोज छपा कर प्रकाशित किया। १८७९ खीष्टाब्द में मल्लिनाथ की टीका सहित मेघदूत का पाठादि विवेक मुद्रित किया। विश्व विद्यालय के छात्रों के पाठ के लिये १८७१ खीष्टाब्द में उत्तर चरित्र और अभिज्ञान शकुन्तला नाटक की स्वयं टीका कर उसे छपवा कर प्रकाशित किया।

कर्म्मटार

कलकत्ते में सर्व्वदा अव स्थिति रह कर ईश्वरचन्द्र का शरीर स्वस्थ होना दुष्कर था। कारण यह था कि प्रातःकाल सर्व्वत्र ९ बजे तक अनेक लोग कोई किसी लिये उन्हें घेरे रहते थे। उनके साथ बातचीत करते रहने से रात्रि में नींद नहीं आती थी। सदा वे उदरामय रोग से पीड़ित रहते थे। इत्यादि कारणों से आत्मीय बन्धु और चिकित्सकगण के परामर्शानुसार सौंताल पर्गने के अंतर्गत कर्म्मटार रेलवे स्टेशन के अति निकट एक बङ्गला बनवाया और वहीं रहना स्थिर किया। क्रमशः सौंताल लोगों के साथ उन का उत्तम रूप से सद्भाव और परिचय हो गया था। सौंताल लोग कितने ही उन के बाग़ में मज़दूरी करते थे। उनका दैनिक वेतन कुछ अधिक कर

दिया। उनकी शिक्षा के लिये एक स्कूल स्थापित कर दिया। प्रति वर्ष पूजा के समय उनको हजारों रुपये का वस्त्र बांटते थे। प्रतिवर्ष शीतकाल में एक २ मोटी चादर और कम्बल बांटते थे। नाना प्रकार के फलफूल आदि कलकत्ते से लाकर सौंताल लोगों को बैठा के खिलाते थे। सन् १८७६ साल के आषाढ़ मास में उन की मध्यम दुहिता श्रीमती कुमुदिनी देवी का विवाह हुआ।

काशी

सन् १८८० साल के अगहन मास के प्रारम्भ में पिता जी अत्यंत पीड़ित हुये। सम्वाद पातेही ईश्वरचन्द्र ने कर्म्मटार से काशी की यात्रा की।

बराबर दो महीने तक दिन रात सेवा शुश्रुषा करने से पिता ने सम्पूर्ण रूप से आरोग्य लाभ किया। उनके उपस्थित समय में पितामही के एकोदिष्ट श्राद्ध में महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था उन ब्राह्मणों के कार्यकलाप से ईश्वरचन्द्र अति प्रसन्न होते थे। मदनमोहन तर्कालङ्कार की माता विश्वेश्वरीदेवी पहले कलकत्ते में रहती थीं वधू के साथ लड़ाई झगड़ा होने के कारण वे बड़ी क्लेशित हो गई थीं। ईश्वरचन्द्र ने उनका १०) रु० मासिक कर उन्हें काशी भेज दिया। वहाँ रह वे हृष्टपुष्ट होगयीं। इसके अतिरिक्त और भी रुपये वे देते

रहे। वहाँ १८ वर्ष रह उन्होंने काशी वास किया। ईश्वरचन्द्र विन्ध्यवासिनी देवी को ४) रु० मासिक देते रहे इन्होंने प्रायः १० वर्ष तक मासक पाकर काशीवास किया। एक और दूसरी विन्ध्यवासिनी देवी को १२ वर्ष तक ३) रु० मासिक देते रहे वह भी काशीवास कर गयीं। इसी प्रकार ताराकान्त को ४) व बापूदेव शास्त्री को २) रु० मासिक देते रहे। राधा-नाथ चक्रवर्ती ने कई वर्ष २) मासिक पा काशीवास किया था निस्तारिणी देवी ४) रु० मासिक १३ वर्ष तक पाकर काशी प्राप्त हुई थीं। ठाकुरदास के पुरोहित राममाणिक्य तर्कालङ्कार ने १५) रु० मासिक प्रायः १२ वर्ष तक पाकर परलोक गमन किया था। ईश्वरचन्द्र स्वास्थ्य रक्षा के लिये पैदल नित्यप्रति प्रातः व सायङ्काल प्रायः २ कोस भ्रमण करतेथे सङ्गमें २०।२२ रुपये की अठन्नी दुअन्नी और चौअन्नी रखते थे मार्ग में अनाथ निरुपायादि को अवस्थानुसार दान करते थे। सन् १८८२ सालकी १ली वैशाख को सूर्यास्त के समय ठाकुरदास ने काशी लाभ किया। पिता की मृत्यु देखकर वे रोदन करने लगे। उस समय सभी नाते गोते के बन्धुबान्धव उपस्थित थे। ईश्वरचन्द्र भीड़ नहीं चाहते थे। उपस्थित भद्र लोगों को क्लेश न दूंगा। यह कह तीन सहोदर व कनिष्ट भूश्वर प्रतापचन्द्र कांजीलाल महाशय ये चार जने उठाकर लेगये.

पुरोहित और भृत्य को साथ ले गये। मणिकर्णिका घाट

पर दाहादि कार्य समाप्त कर स्नान तर्पण कर निवास गृह पर चले आये। वे गृहपर आ बालक की भाँति रोदन करने लगे। यह देख कितने ही लोग आश्चर्य करने लगे कि विद्यासागर महाशय नीतिज्ञ और पंडित होकर वृद्ध पिता के लिये इतने शोकाभिभूत क्यों होते हैं। २री वैशाख प्रातःकाल से उनको भेद व वमन होने लगा। अत्यन्त दुर्बल होने लगे यह देख सब भ्राताओं ने कहा आजही काशी परित्याग कर कलकत्ता जायंगे। प्रथमतः ईश्वरचन्द्र ने प्रकाशित किया कि पिता का श्राद्धादि कार्य समाप्त कर कलकत्ता जायंगे। कलकत्ता न जाने का कारण यह था कि इसके पहिले पिता जी ने एक पत्र लिखकर उनके हाथ में दिया था। उसका यह मर्म्म था कि हमारे अन्तिम समय में ज्येष्ठ पुत्र रहे और दाहादि कार्य सम्पन्न कर काशी में ही आपश्राद्ध करे। हम जिन महाराष्ट्रीय वेदज्ञ और अन्यान्य हिन्दुस्थानी ब्राह्मणों को भोजन कराते थे उनको भोजन करालें इन्हीं सब कारणों से कलकत्ता जाने को वे सम्मत नहीं होते थे। पीछे ब्राह्मणों ने कहा कि कलकत्ते जा स्वस्थ होकर आने के उपरान्त ब्राह्मण भोजनादि कार्य सम्पन्न करो। यह सुनकर उन्हें कलकत्ता जाना पड़ा। कलकत्ते में भी उनके आंसू बन्द न हुए। विधिपूर्वक पिता का दैहिककृत्य समाप्त किया। पीछे काशी आकर पिता की आज्ञा का पालन उन्होंने किया था। पत्र के अनुसार काशी में कार्य

समाप्त कर पितृभक्ति का आदर्श दिखलाया था।

सन् १८८४ साल के वैशाखमास में उनकी कनिष्ठा कन्या श्रीमती शरत् कुमारी देवी का विवाह हुआ। १८४६ खीष्टाब्द के शेष में पाठ्यावस्था शेषकर संस्कृत कालेज परित्याग करने के समय उक्त कालेज के अध्यक्ष और अध्यापकगण ने उनको विद्यासागर की उपाधि प्रदान की थी।

१८७३ साल के दुर्भिक्ष समय में कंगालों ने उनको दयासागर की उपाधि प्रदान की थी। १८८० साल में महाराणी विक्टोरिया ने कम्पेनियन आफ़ इण्डियन एम्पायर की उपाधि प्रदान की थी। सन् १८६४ साल के चैत्र मास में ईश्वरचन्द्र ने कहा कि पिता जी ने हमको जिन कार्यों का भार दिया था उनमें से तीन कार्य नहीं किये गये पहिला काम गयाकृत्य। मैं जैसा शरीर से दुर्बल हूं उससे गयाधाम जाकर स्वयं समस्त कार्य कर सकूंगा ऐसा प्रतीत नहीं होता। दूसरा काम वीरसिंह ग्राम में गृह के उत्तर की ओर पितामह के श्मशान में एक मठ निर्माणकर उसके चारों ओर लोहे की छड़ों से घेरा देना। तीसरा काम, पितामही देवी के लगाये हुए वट वृक्ष के नीचे एक बड़ा सा चउतरा बनवाना जिसमें चारों ओर ग्रामस्थ मनुष्य खुशी से बैठ सकें और उसके पास चारों तरफ़ लोहे की बेंचें डाल देना चाहिये।

मलयपुर ।

गवर्नमेंट ने दामोदर नद के पूर्वांश वाले रेल की सड़क की रक्षा करने के लिये नदी के पश्चिम ओर का बाँध खोल दिया था इस कारण मलयपुर पानी के प्रवाह से बहा जाता था और उसमें धान्यादि कुछ उत्पन्न होता था इस कारण ईश्वरचन्द्र उन ग्रामवासियों की रक्षा के लिये दयापूर्वक अनेक लोगों को नई भूमि अनेकों को द्रव्य देते रहे व प्रायः ५० लोगों को ४ मास तक दोनों समय भोजन कराते रहे थे।

हाराधन वन्द्योपाध्याय कई नाबालिग पुत्र और कुमारी-कन्या विधवा भगिनी और भागिनेय को छोड़ लोकान्तरित हुये उनके परिवार के प्रतिपालन का कुछ उपाय न था। इस कारण ईश्वरचन्द्र १५) मासिक देते थे। ७००) देकर उनकी कन्या का विवाह; करवा दिया। एवं नया गृह प्रस्तुत करने के हेतु १००) प्रदान किये।

ये दुग्ध नहीं पीते थे किन्तु प्रतिमास ऊपरी लोग और गृह के और लोगों के लिये प्रायः ८०) का दुग्ध मोल लेते थे। भोजन के समय जो लोग दूसरे स्थान पर नौकरी करते थे वे भी दोनों वेला आकर भोजन करते थे कई बालकभी आकर आहार करके विद्यालय में अध्ययन करने थे प्रतिवर्ष दुर्गा-पूजा के समय ५।६ सहस्र रुपये का वस्त्र बाँटते थे। दूसरे

समय भी कपड़ों की दुकान सजाये रखते व अनाथ दीन दरिद्र आदि को देखकर उनके इज्ज़त के अनुसार देते थे। इसमें भी प्रायः प्रतिवर्ष ३।४ सहस्र रुपये व्यय होते थे। वे स्वयं आम नहीं खाते थे किन्तु प्रतिवर्ष प्रायः १५००) रुपये के आम लेकर आत्मीय लोगों के गृह भेजते थे। गृह के लोगों से छिपाकर नौकरों को व मिहतरों को स्वयं खड़े होकर आम खिलाते थे उस समय उनके विद्यालय के शिक्षक व छात्र व अन्य जो व्यक्ति आते उनको भी अपने सन्मुख आम खिलाते थे। क्षेत्रमोहन हलधर को ४००) देकर उसका गृह नीलाम होने से बचा लिया। वैष्णवचरण सर्कार को भी ४००) देकर उसका भवन नीलाम होने से मुक्त किया।

सन् १८९५ साल के श्रावण मास में स्त्री को रक्तातिसार की पीड़ा होने लगी। दिन २ पीड़ा की वृद्धि होने लगी चिकित्सा द्वारा कुछ लाभ न होने के कारण भाद्र मास की १ ली बृहस्पतिवार को रात्रि ९ बजे पति पुत्र आदि समस्त परिवार के लोगों के सामने उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। उन्होंने शोक में अधीर होकर भी अपने धैर्य्य और गाम्भीर्य्य गुण से शोक दुःखादि को न प्रकटकर अपने पुत्र नारायणचन्द्र वन्द्योपाध्याय के द्वारा उसकी दाहादि क्रिया कराई पीछे कलकत्ते में श्राद्ध किया। उसी वर्ष पौष मास में नारायण को खर्च देकर वीर, सिंह भेजा व उसने ग्रामस्थ समुदाय स्त्री पुरुषों को व

निकटवर्त्ती ज़मींदार व भद्र लोगों को निमन्त्रित कर आदर पूर्वक सब लोगों को भोजन कराया था। उस कार्य में भी यथेष्ट व्यय हुआ था। एक दिन वे प्रसन्नता से कथावार्त्ता करते थे। ऐसे समय दो धर्म्म प्रचारक व कई पंडित आकर उन से आदर पूर्वक कहने लगे कि, विद्यासागर महाशय! धर्म्म के विषय में बङ्गदेश में बड़ा हलचल मचा है निज २ इच्छानुसार लोग कहते हैं इस विषय का कुछ भी ठिकाना नहीं है। आप के विना इस विषय की मीमांसा होने की सम्भावना नहीं है। यह सुन कर ईश्वरचन्द्र ने कहा धर्म्म क्या है? यह मनुष्य की वर्त्तमान अवस्था के ज्ञान के ऊपर है एवं इस के जानने का भी कोई प्रयोजन नहीं है। यह सुनकर उन्होंने और भी हठ करके पूछा। तब विद्यासागर ने कहा मुझे ज्ञात होता है कि पृथिवी के प्रारम्भ से ऐसा ही तर्क चला आता है और यावत पृथिवी रही तावत यह तर्क रहेगा। किसी समय में भी इसकी मीमांसा नहीं होगी। उसका दृष्टान्त देखो महाभारत में वेद व्यास ने लिखा है। वक रूपी धर्म्मराज के इस मर्म्म को धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिर से पूछने पर युधिष्ठिर ने उत्तर दिया।

श्लोक

वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः नासौ मुनिर्यस्य मते न भिन्नं।
धर्म्मस्य तत्वं निहितं गुहायां महाजनो येनगतः सपन्थाः॥

भगवतीविद्यालय ।

वीरसिंहस्थ विद्यालय की मुहर और नामकरण का उल्लेख होने पर ईश्वरचन्द्र ने अपने भ्राता शम्भुचन्द्र से अपना अभिप्राय प्रकट किया। शम्भुचन्द्र ने विद्यासागर इन्स्टीट्यूशन नाम लिखा ईश्वरचन्द्र ने कहा मैं तुम्हारी अपेक्षा उत्तम नाम लिख सकता हूं यह कह भगवतीविद्यालय यह नाम लिख शम्भुचन्द्र वउपस्थित व्रजबाबू आदि से कहा शम्भु की अपेक्षा हमारा लिखना भला हुआ कि नहीं ? शम्भुचन्द्र ने कहा। महाशय ! लिखना भला होने से क्या होगा। इस में अनेक दोष हैं विद्यालय आप के नाम से रह कर किसी कारण से उठजाय तो उसका दोष आप के पुत्र के ऊपर रहेगा; किन्तु जननी देवी के नाम हो कर उठ जाने से लोग कहेंगे कि विद्यासागर बड़ा कुलाङ्गार है। कि उसने मातृदेवी की कीर्त्ति का लोप किया। उन्होंने कहा कि मैं क्या इसका बन्दोवस्त नहीं करूंगा। तुम उसके लिये आठ बीघा पृथिवी स्थिर करो स्कूल के स्थापित्व के विषय में तुम को सोचना न होगा ! यह कह वृज बाबू को मुहर बनवाने का भार सौंपा तब से जननी देवी के नाम से भगवती विद्यालय हुआ। इस समय भगवती विद्यालय में चौदह शिक्षक नियुक्त हुये एवं मासिक २६२) रुपये के व्यय का प्रबन्ध हुआ फिर कहा स्कूल भवन के

लिये १० हज़ार रुपये व आवश्यकता होने पर और २।३ सहस्र दूंगा।

पौष मास में उनकी पीड़ा की दिन २ वृद्धि होने लगी बल का ह्रास व मानसिक अवस्था की अवनति होने लगी। यह देख चिकित्सकगणों ने कलकत्ता परित्यागकर जल वायु का परिवर्तन करने के लिये अच्छे स्वास्थ्यकर स्थान में निवास करने का अनुरोध किया इस ओर मेट्रोपालिटन की अवस्था ऐसी हो गई थी कि मध्य मध्य में मेट्रोपालिटन में स्वयं उपस्थित हो समस्त विषय स्वयं तत्वावधान न करने से किसी प्रकार न चलता।

इस कारण सामयिक दूरवर्ती स्वास्थ्यकर प्रदेश में न जा सके। किन्तु कलकत्ते में रहने से भी नहीं चलता है ऐसी अवस्था में गङ्गा के तीर फराशडाङ्गा में २ भवन किराये पर लेकर और नित्य व्यवहारोपयोगी द्रव्य सामग्री लेकर वहाँ गमन किया। मध्य मध्य में मेट्रोपालिटन और अन्यान्य विषयों के लिये कलकत्ते आना पड़ता था। प्रथम मास में किंचित स्वाथ्य लाभ किया किन्तु कन्या व दौहित्रादि निकट न रहने से और मन की स्वच्छन्दता के न रहने के कारण उन को फराशडाङ्गा लेगये। इसी समय पौष मास के प्रारम्भ में राम राघव मुखोपाध्याय ने जन्मपत्री की गणना कर मृत्यु की आशङ्का प्रगट की और बहुत होम और पञ्चाङ्ग स्वस्त्ययन

की व्यवस्था की उसी के अनुसार पुरोहित व ब्राह्मणों के द्वारा सब किया गया किन्तु किसी से कुछ फलोदय न हुआ। उत्त-रोत्तर पीड़ा की वृद्धि होने लगी। यह देख फराशडाङ्गा रहना उचित न जान ज्येष्ठ मास के अन्त में कलकत्ते लाकर चि-कित्सा का उद्योग होने लगा।

१८ आषाढ़ से हकीमी चिकित्सा होने लगी उसकी व्य-वस्था से पीड़ा कम होने लगी किन्तु दुःख का विषय यह हुआ कि दो दिन पीछे हिक्का का रोग उदय हो २०वीं आषाढ़ को कम्प के सहित ज्वर का उदय हुआ। २१वीं आषाढ़ को ज्वर कम हुआ किन्तु हिक्का प्रबल हो पैर शीतल हुये व दो तीन दिन सन्निपात रहा। इस समय आये हुये मनुष्यों का यथोचित आदर करने लगे। एवं उस कष्ट के समय में निज कालेज और स्कूलों के सम्बन्ध में नाना प्रकार की बातें कहने लगे। २२ वीं आषाढ़ को फिर हिक्का की पीड़ा के लक्षण प्रबल होने लगे एवं उस समय नया रोग का आरम्भ देख हकीमी चिकित्सा बन्द हुई।

२४ आषाढ़ को डाक्टर हीरालाल बाबू और बाबू अमूल्य चरण बसु परीक्षा कर २५वीं आषाढ़ को परामर्श के लिये डाक्टर म्याकोनल साहब को ले गये। उक्त साहब ने परीक्षा कर असाध्य जाना और बार्च्च साहब को परामर्श के लिये बुलाने का उपदेश दिया किन्तु म्याकोनेल साहब ने कहा कि

एलोपथी चिकित्सा से यह पीड़ा दूर होना असाध्य है। इस लिये दूसरे दिन १६ आषाढ़ को ६ बजे डाक्टर शलजर साहेब ने आकर भली भाँति परीक्षा करके कहा कि खुमक में केन्सर नहीं हुआ केवल पाक स्थली में ट्यूमर हुआ है। इनके पक्ष में इसीसे मृत्यु होने की सम्भावना है। यह ४।५ दिन में कुछ कम हो सकती है किन्तु इसकी अपेक्षा पण्डित के वयोवृद्धि श्य, शरीर की कमज़ोरी और वृद्धावस्था आदि कारणों से पीड़ा के कम होने की सम्भावना बहुत थोड़ी है। यह कहने पर उनको विदा किया एवं म्याकेनेल और डाक्टर बार्च्च दोनों ने आकर और परीक्षा कर असाध्य कहा। तब डाक्टर हीरालाल बाबू और अमूल्य बाबू की एलो-प्याथिक चिकित्सा बन्द कर शलजर साहब द्वारा चिकित्सा की व्यवस्था हुई उनकी चिकित्सा से वेदना हिक्का, ज्वर आदि के लक्षणों का ह्रास हुआ किन्तु कोष्ठबद्ध पीड़ा का उदय हुआ। हिक्का के लक्षण फिर बढ़ने लगे। मध्य मध्य अम्लपित्त कम होने लगा। डाक्टर शलजर साहब प्रत्यह ३।४ बार आने लगे। किसी दिन कुछ कमी किसी दिन वृद्धि होती थी। हिक्का बन्द न होने पर रजनी गन्ध (फूल) पीस कर सेवन कराया गया यद्यपि इससे हिक्का कम तो हुआ किन्तु उसी दिन थोड़ा ज्वर का उदय हुआ दिन दिन थोड़े २ ज्वर की वृद्धि होने लगी। हिक्का सम्बन्ध

में रजनीगन्ध फूल से कोई फ़ायदा नहीं हुआ। मुख की कांति और जीवन की श्री कम होने लगी।

डाक्टर शलजर ने निराश होकर कहा तुम दूसरे से चिकित्सा करा सकते हो एवं आवश्यकता होने पर मैं भी बन्धुभाव से और चिकित्सकभाव से नित्य आकर देख सकता हूं इस विषय में मेरे मन में कुछ भी आपत्ति वा असन्तोष नहीं है। दूसरे दिन ७ वीं श्रावण को सायं मध्य मध्य में वे जिस औषधि का व्यवहार करते थे वही औषधि होती रही। ६ वीं श्रावण को रात्रि में सामान्य पुराना मल निकला और १०। ११ वीं श्रावण को उनको सबों ने किंचित स्वस्थ जाना उसी दिन ईश्वरचन्द्र के कनिष्ठ सहोदर ने भली भाँति परीक्षा कर कहा यातना आदि पीड़ा के लक्षण हैं सही किन्तु नाड़ी में फ़र्क पड़ गया है। एवं और भी दो एक लक्षणों का उदय हुआ है। इससे अब मेरी राय में और कुछ भी आशा नहीं है। तरुण वयस्क होने से हाल ही में मृत्यु की सम्भावना थी किन्तु गिरती उम्र होने से और शरीर की दृढ़ गठन के कारण मृत्यु में २।३ दिन का विलम्ब है। शेष कई दिन यद्यपि राज ज्वर की वृद्धि होने लगी तथापि थोड़े थोड़े दस्त होने से मृत्यु समय पर्यन्त उनके ज्ञान का व्यतिक्रम नहीं हुआ।

मृत्यु के पहिले ज्वर कम होकर नाड़ी की कमी होती

है किन्तु १३वीं श्रावण के अपरान्ह से ज्वर की वृद्धि होने लगी। रात्रि ६ बजे से प्रति मिनट नाड़ी की गति १३० और श्वास प्रश्वास की संख्या ५० से न्यून न थी।

किन्तु इस पीड़ा के अन्य समय में नाड़ी की स्वाभाविक गति ६० से कम न थी। इसी दिन रात्रि सवा बजे के पीछे ज्ञान राशि का ज्ञान लोप हुआ। दो बज कर १८ मिनट के समय उन्होंने इस असार संसार का परित्याग किया। उनके आत्मीय वर्ग ने उनको थोड़ी देर पल्पङ्क पर शयन कराके उनके एक मात्र पुत्र नारायण को साथ ले उनके आदर की वस्तु मेट्रापोलिटन कालेज में थोड़ी देर रख बन्धुबान्धव के साथ फिर कन्धों पर चढ़ाय नीमतला के घाट पर उतारा और थोड़ी देर पीछे श्मशान में जा अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त की। अनन्तर सब ने गङ्गा में स्नान तर्पणादि कर बादुड़ बागान के भवन को प्रत्यागमन किया।

सम्पूर्णम्।